भारतीय नवयुवकों द्वारा सञ्चालित

तरुण-भारत-ग्रन्थावली-सं० ६।

दिल्ली अथवा इन्द्रप्रस्थ।

"Empires and nations flourish and decay
By turns command and in their turns obey"

लेखक,

श्रीयुत दत्तात्रेय बलवन्त पारसनीस।

अनुवादक,

श्रीयुत रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे।

प्रकाशक,

तरुण-भारत-ग्रन्थावली-कार्यालय,

दारागंज, प्रयाग।

सं० १९७५ वि०

थमावृत्ति] [illegible] [मूल्य ॥) आने।

[illegible]

[illegible]

तरुण-भारत-ग्रन्थावली ।

भारतीय तरुणों में नवजीवन का संचार करने के लिए इस ग्रन्थावली में ऐतिहासिक, नैतिक और जीवनचरितसम्बन्धी उत्तमोत्तम ग्रन्थ निकलते हैं। ग्रन्थावलीके स्थायी ग्राहकोंको सब ग्रन्थ पौने मूल्य पर मिलते रहते हैं। प्रवेश फीस, आठ आना, पहले वी० पी० के साथ लगा ली जाती है।

इस ग्रन्थावलीके ग्रन्थोंका प्रचार करके, इसके स्थायी ग्राहक बढाकर, हमारे इस पवित्र साहित्यकार्यमें सहायता करना प्रत्येक मातृभाषा हितैषीका कर्तव्य है। इस लिए कृपया आप स्वयं स्थायी ग्राहक बनें, और अपने अन्य मित्रोंको भी बनावें। यह आवश्यक नहीं है कि, स्थायी ग्राहक सब पिछली पुस्तकें लेवें—जो उनको पसन्द हों, वही लेवें—अथवा सब लेवें—यह उनकी इच्छा पर निर्भर है।

अभी तक निम्नलिखित ग्रन्थ निकल चुके हैं —

अपना सुधार—इस पुस्तकमें शारीरिक, मानसिक और आचरणसम्बन्धी सुधारके अनुभवजन्य उपाय बतलाये गये हैं। जान स्टुअर्ट ब्लेकीके प्रसिद्ध ग्रन्थ " सेल्फकलचर " के आधार पर इसकी रचना हुई है। पुस्तक नवयुवकोंके लिए बहुत ही उपयोगी है। मूल्य छै आने।

फ्रांस की राज्यक्रान्ति—अठारहवीं शताब्दीमें राजकीय अत्याचारों से त्रस्त होकर फ्रांसकी प्रजा ने जो राज्यक्रांति की थी, उसीका मनोरंजक वर्णन इस पुस्तकमें दिया हुआ है। सच्चा इतिहास होने पर भी इसके पढ़ने में उपन्यास का सा आनन्द आता है। राजनैतिक और ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें, ऐसी पुस्तक हिन्दीमें अभी तक नहीं निकली है। मूल्य ॥=)

महादेव गोविन्द रानाडे—राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और औद्योगिक—चारो विषयोंमें भारतकी उन्नतिके लिए पूर्ण प्रयत्न करनेवाले देशभक्त महात्मा रानाडेका यह सुविस्तृत चरित्र बड़ीही मार्मिक भाषामें लिखा गया है। इसके पढनेसे पाठकोंके हृदयमें स्वदेशाभिमान और स्वदेशभक्तिकी ज्योति जाग्रत हुए विना नहीं रहती। महात्मा रानाडे और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रमाबाई रानाडेके दो चित्र भी पुस्तकमें यथास्थान दिये हुए हैं। मूल्य ।॥) आने।

एब्राहम लिंकन—जिस महात्माने एक झोपड़ीमें जन्म लेकर अपने उद्योग, साहस, परोपकार और सदाचारके बल पर अमेरिकाके राष्ट्रपति (प्रेसिडेंट) की पदवी प्राप्त की, उसी महात्माका यह स्फूर्तिदायक चरित्र है। इसी महात्माने अमेरिकासे गुलामीकी घृणित प्रथाका सदैवके लिए निर्मूलन किया। अपने देशके लिए अन्तमे अपने प्राण तक दे दिये–ऐसे स्वदेशहितैषी महात्माका चरित्र प्रत्येक भारतीय नवयुवकको अवश्य पढना चाहिए, पुस्तक सचित्र है। मूल्य सिर्फ ॥=)

ग्रीसका इतिहास—यूरपमें रोम और ग्रीसकी सभ्यता अत्यन्त प्राचीन समझी जाती है। ग्रीसकी सभ्यता तो भारतकी प्राचीन सभ्यतासे बहुत कुछ मेल रखती है। उसी ग्रीस देशकी राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक क्रान्तियोंका मनोरंजक तथा उपदेशप्रद वर्णन इस इतिहास ग्रन्थमें दिया गया है। ग्रीस देशके उत्थान और पतनसे उपदेश लेकर हमें अपने देशको पतनसे बचाते हुए, बड़ी युक्तिसे, उत्थानके मार्ग पर ले जाना चाहिए। पुस्तक ऐतिहासिक संसारमे बिलकुल नवीन है। मूल्य १=) आने।

रोमका इतिहास—लेखक-प्रोफेसर ज्वालाप्रसाद एम० ए०। यह महत्वपूर्ण इतिहास भी तैयार हो रहा है।

अन्य पुस्तकें।

ईश्वरीय बोध—महात्मा रामकृष्ण परमहंसके उपदेशोंका संग्रह। मू० ।-)

सफलताकी कुंजी—स्वामी रामतीर्थजीके एक उत्तम उपदेशप्रद व्याख्यान का अनुवाद। मूल्य ।) आने।

हिन्दू जातिका ह्रास—विषय नामहीसे प्रकट है। मूल्य -) आना।

इटलीकी स्वाधीनता—मेजिनी, ग्यारीबाल्डी, इत्यादि ज्वलन्त देशभक्तोंने अपनी मातृभूमि इटलीको परकीय शासनसे मुक्त करके स्वतन्त्र कैसे बना दिया, इसका विस्तृत, उपदेशप्रद, और मनोरंजक इतिहास इस पुस्तकमें मिलेगा। पुस्तक भारतीय नवयुवकोंके अध्ययन करने योग्य है। मूल्य छै आने।

स्वदेशाभिमान—अपनी मातृभूमिपर बलिदान होनेवाले अनेक वीरोंकी छोटी छोटी कहानियाँ। यह पुस्तक भारतमाताके प्रत्येक बच्चेके हाथमें होनी चाहिए। मूल्य ।) आने।

व्यवस्थापक,
तरुण-भारत-ग्रन्थावली-कार्यालय,
दारागंज, इलाहाबाद।

निवेदन।



तरुण भारत ग्रन्थावलीकी यह छठवीं संख्या हिन्दी प्रेमियोंकी सेवामें उपस्थित की जाती है। यह पुस्तक मराठीके प्रसिद्ध ऐतिहासिक लेखक रावबहादुर श्रीयुत दत्तात्रेय बलवन्त पारसनीसकी लिखी हुई पुस्तकका अनुवाद है। पारसनीस महाशयने मूल पुस्तक स्वतन्त्र रीतिसे तो लिखी ही है, किन्तु साथ ही साथ अनेक इतिहास-अन्वेषक देशी तथा विदेशी विद्वानोंकी सहायता भी ली है, अतएव पुस्तक, छोटी होनेपर भी, साहित्यकी दृष्टिसे, बहुत उपयोगी हुई है।

यह हमारी भारतभूमि पवित्र और ऐतिहासिक स्थानोंका भांडार है। जिस प्रकार धार्मिक तीर्थस्थलों और प्राकृतिक रमणीय स्थानोंकी यहां कमी नहीं है, उसी प्रकार ऐतिहासिक और राष्ट्रीय दृष्टिसे भी हमारे देशके अनेक नगर बहुत ही महत्त्वके हैं। उन सब नगरोंमें "दिल्ली अथवा इन्द्रप्रस्थ" का दर्जा बहुत ही बढ़ा हुआ है। इस नगरने जितने राजकीय परिवर्तन देखे हैं, उतने शायद ही और किसी नगरने इस पृथ्वीतल पर देखे हों। और इसी लिए इस नगरीका इतिहास हमारे लिए बहुत ही मनोरंजक और बोधप्रद है,—यही नहीं, किन्तु एक भारतीय सन्तानके लिए वह अत्यन्त विचारणीय और गम्भीर विषय है। भारतीय साम्राज्य और सभ्यताका वह पूर्व गौरव, किन किन परिवर्तनोंसे देखता हुआ, और आज किस स्वरूपमें आ पहुँचा है—इसका मूर्तिमान चित्र यदि आंखोंके सामने आपको लाना है, तो अनेक राज्यक्रांतियोंसे पूर्ण दिल्लीका इतिहास आपको पढ़ना चाहिए। वह सारा इतिहास विस्तृतरूपसे यद्यपि इस छोटीसी पुस्तकमें आपको नहीं मिलेगा, फिर भी जो कुछ इसमें आपको मिलेगा, उसे पढ़कर आपके हृदयमें, अपनी इस सनातन और पुरातन राजधानीके विषयमें, एक प्रकारकी सहानुभूतिपूर्ण श्रद्धा अवश्य जागृत होगी। यह श्रद्धा जागृत

होकर यदि आपके हृदयमें कोई संवेदना उत्पन्न करेगी, तो हम इस ग्रन्थका प्रकाशन सार्थक समझेंगे। परमात्मा ऐसा ही करे !

अन्तमें हम अपने प्रेमी श्रीयुत रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे महाशयको बहुत बहुत धन्यवाद देते हैं कि, जिन्होंने हमारी प्रार्थना पर, बड़े उत्साहसे, तरुण-भारत ग्रन्थावलीके लिए, यह ग्रन्थ हिन्दीमें प्रस्तुत कर दिया। आप एक उत्साही नवयुवक हिन्दीप्रेमी हैं। परमात्मा आपकी आकांक्षाएं पूर्ण करे !

बम्बई,
पौष शुक्ल ११,
सं. १९७५ वि०।

लक्ष्मीधर वाजपेयी।



अनुक्रमणिका।





मूर्तिमत प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास बतलानेवाला नगर सिर्फ दिल्ली ही है । तीन हजार वर्ष तक कालचक्रकी अनन्त लीलाओंको देखकर, फिर भी सब लोगोंके अन्त करणोंको अपनी ओर खींच लेनेकी सामर्थ्य इस नगरीमें सचमुच बडी विलक्षण है । पाडव, कौरव, अशोक, जैन, विक्रम, चौहान, पठान, मुगल और मराठे आदि सबको सार्वभौमिकता प्राप्त करा देनेका मान इसी नगरने प्राप्त किया था, और उन सबको अपने पर्दोमें लीन कर छोडा था । केवल यही नहीं, किन्तु सारी पृथ्वीपर अपनी राजसत्ता जमानेवाले अंग्रेज लोगोंको भी इस नगरने मोहित कर लिया है । पौराणिक कालके इन्द्रप्रस्थको मुसलमानी राजत्वकालमें जितनी महत्ता प्राप्त थी, उतनी ही महत्ता उसे मराठोंके शासन-कालमें प्राप्त थी, और ब्रिटिश शासन-कालमें भी यह नगर उतना ही महत्त्व-शाली बना हुआ है । पाण्डवोंका राजसूय यज्ञ, मयासुरकी अपूर्व मय-सभा, शाहजहॉं बादशाहके बहुमूल्य और रत्नजटित मयूरसिंहासनके सामनेवाला आम दरबार, चक्रवर्तिनी देवी विक्टोरियाका 'कैसरे हिन्द' पदका बृहद् दरबार, अथवा भारतके वाइसराय लार्ड कर्जनके द्वारा किया गया राजाधिराज सप्तम एडवर्ड बादशाहके राज्यारोहणका दरबार, चक्रवर्ती सम्राट् पचम जार्जके राज्यारोहणका अनुपम दरबार, आदिके समान दुर्लभ और प्रेक्षणीय महोत्सव इसी नगरमें हुए हैं ! ऐसे विशिष्ट स्थलका वर्णन कौन नहीं सुनना चाहेगा ?

दिल्ली शहरके दो प्राचीन नाम, हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ, और एक अर्वाचीन नाम, शाहजहानाबाद, प्रसिद्ध है । साधारणतया प्राचीन ग्रन्थों और कागजोंमें दिल्लीके लिए उपर्युक्त नामोंका ही प्रयोग किया जाता है । परन्तु आज-कल ये स्थान भिन्न भिन्न है, और उनमेंसे कुछका 'नई दिल्ली' और कुछका 'पुरानी दिल्ली' में समावेश होता है। इन्द्रप्रस्थ नामका स्थान 'पुराने किले' के नामसे प्रसिद्ध है । हस्तिना-

पुर नामक स्थान दिल्लीसे अलग है। और, शाहजहानाबाद दिल्ली शहर में शामिल है। कहते है कि, पहले दिल्ली बडा विस्तीर्ण नगर था। उसकी परिधि ४५ मीलकी थी। इस नगरको इन्द्रप्रस्थका नाम अत्यन्त प्राचीन कालसे मिला है। जनरल कनिगहमका यह अनुमान है कि, ईस्वी सदीके पन्द्रह सौ वर्ष पहले उत्तरसे आनेवाले आर्य लोगोंने यमुना नदीके सुन्दर प्रवाहको देखकर उसके तटपर इस नगरकी रचना की होगी। महाभारतसे यह मालूम होता है कि, धर्मराज युधिष्ठिरने इस नगरकी सृष्टि की है। इससे यह अनुमान होता है कि, इस नगरकी सृष्टि आजसे ७००० वर्ष पहले हुई होगी। आजकलके ज्योतिष-शास्त्र-विशारदोंके मतानुसार भारतीय युद्धका समय आजसे ७११४ वर्ष पहलेका है। इससे स्पष्ट है कि, इस कालके पहलेसे ही इस नगरका अस्तित्व रहा होगा। कुछ लोगोंका यह मत है कि, जिस समय इन्द्रप्रस्थ नामक नगरी प्रस्थापित की गई थी, उस समय यमुनाका प्रवाह उसके वर्तमान प्रवाहसे भिन्न था। अस्तु, जब कि महाभारतके पहलेकी देश-दशाका विचार करनेके लिए कोई अच्छा साधन उपलब्ध नहीं है, तब फिर यह माननेमें कोई आपत्ति नहीं है कि, इन्द्रप्रस्थकी नगरी पाण्डवोंके कालसे ही अस्तित्वमें आई।

इन्द्रप्रस्थका राज्य पाण्डवोंके वंशमें तीस पीढियों तक, यानी लगभग १८५४ वर्ष रहा।* इसके बाद, तीसवीं पीढीके राजा क्षेमक अथवा लखमीदेवके प्रधान वीरसेन अथवा विसर्वने इस राज्यको छीन लिया। उसने तथा उसके वंशजोंने २४७ वर्ष तक राज्य किया। इसके बाद,

* दिल्लीके राजाओंकी सम्पूर्ण नामावली इस पुस्तकके अन्तमें परिशिष्टरूपसे दी गई है। उसमें पाण्डवोंसे लेकर मुगल बादशाहोंके अन्त तक समस्त राजाओंके नाम और उनके शासनके समय दिये हैं।

उसके वशके अन्तिम राजा पृथ्वीपालसे नरहरिनाथ नामक उसके दीवानने यह राज्य छीन लिया । इसका राजवंश गौतमके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस वशके राजाओंके हाथमें यह राज्य ३८९ साल तक रहा। इसके बाद मयूरोंका राज्य हुआ। इस वशके अन्तिम राजाको मारकर शकादित्यने राज्य छीन लिया । इसके बाद राजपूत लोग राजा हुए। इस प्रकार अनेक वर्षों तक इन्द्रप्रस्थ हिन्दू राजाओंके हाथमें रहा। इसके पश्चात् क्रमशः पठान, मुगल, मराठों और अन्तमें अंग्रेज लोगोंके हाथमें यहाकी सत्ता चली गई । जनरल कनिंगहमका मत है कि, इन्द्रप्रस्थको दिल्ली अथवा दिल्लीपुर नाम ईस्वी सनके एक शताब्दी पहले प्राप्त हुआ होगा। उन्होंने मुसलमान इतिहास-लेखक फरिस्ताके आधार पर यह प्रतिपादन किया है कि, पहलेका दिल्ली शहर आज कलकी दिल्लीसे ५ मीलकी दूरी पर, जमुना नदीके तट पर, बसा था, और मयूर वशके दिलू नामक राजासे उसे 'दिल्ली' नाम प्राप्त हुआ। परन्तु इससे भी अधिक विश्वसनीय वृत्तान्त ईसवी सन्की तीसरी अथवा चौथी शताब्दीसे प्राप्त हो सकता है। दिल्लीमें जो एक प्रख्यात लोहस्तभ है उसपर एक संस्कृत लेख सुदा है । उससे जान पडता है कि, धव नामक राजाने अपना प्रताप ससारमें प्रकट करनेके लिए यह लोहस्तम्भ खडा किया। जनरल कनिंगहमके मतसे इस लोहस्तम्भका समय सन् ३१९ ईसवी है। उन्होंने यह अनुमान निकाला है कि, इस समयमें चूंकि कन्नौजका गुप्त नामक राजघराना सत्ताहीन हुआ, अतएव उस समय उपर्युक्त राजाने अपने पराक्रमको व्यक्त करके विजयानन्दसे इस लोहस्तभको खडा किया होगा। परन्तु, फिर पीछेसे इस लोहस्तम्भके संस्कृत लेखका आधार भी रद्द होगया, और परम्परासे चली आई हुई दन्तकथाओंने, आठवीं शताब्दीके तुम्वर अथवा तोमर घरानेके प्रस्थापक राजा बिल्हणदेव उर्फ अनगपालको, इस लोहस्तम्भका

जनकत्व दिया। दिल्लीमें इस विषयकी अनेक दन्तकथाए प्रचलित है। उनमें एक दन्तकथा इस प्रकार है —“ एक दिन किसी ब्राह्मणने राजासे आकर कहा कि, आपने जो यह स्तम्भ स्थापित किया है उसका सिरा धरतीके भीतर शेषनागजीके मस्तकमें जा लगा है, और आपका यह स्तम्भ खूब दृढ हो गया है--अतएव आपका राज्य भी इसी प्रकार दृढ रहेगा। जब तक यह स्तम्भ यहा रहेगा तब तक आपका राज्य अबाधित रहेगा, और आपहीके वशमें बना रहेगा। ” राजाको ब्राह्मणका कथन सच मालूम हुआ, और उसके कथनकी परीक्षा लेनेके लिए उसने उस लोहस्तम्भको उखाडकर देखनेकी आज्ञा दी। जब वह स्तम्भ उखाड कर देखा गया तब उसके निचले सिरेमें सचमुचही खून लगा हुआ दिखाई दिया, क्योंकि स्तम्भ शेषनागके मस्तकमें घुस गया था! यह देखकर राजाको ब्राह्मणके कथनकी सत्यता पर विश्वास होगया। राजाने उस स्तम्भको फिर गाडनेकी कोशिश की, परन्तु वह पहलेके समान दृढतापूर्वक नहीं गडा, किन्तु कुछ ढीला रह गया। वह लोहेकी लाट चूंकि ‘ढीली’ रही, और इसी लिए उस स्थानको “ ढिल्ली ” या “ दिल्ली ” कहने लगे। इसके सिवा और भी कई किंवदन्तिया प्रचलित हैं। टालेमीके ग्रथमें “ देदल ” और “ इन्द्रबर ” नामके जिन दो पास-पासवाले शहरोंका उल्लेख किया गया है, उनसे “ दिल्ली ” और “ इन्द्रप्रस्थ ” के नामोंकी बहुत कुछ समानता है। इसलिए स्पष्ट है कि, ये दो नाम बहुत प्राचीन हैं। कई एक प्राक्कालीन इतिहास-अन्वेषकोंका मत है कि, दिलू अथवा घिलू नामके राजासे ही “ दिल्ली ” नाम पडा है, और विक्रमीय शताब्दीके पहले, यानी ईसवी सनके ५७ वर्ष पहलेके लगभग इस नामका प्रचार हुआ। विक्रम राजाके विषयमें हिन्दी भाषामें जो कवित्त प्रचलित है उनमें यह उल्लेख है कि, “ दिल्लीपति कह्यो ”–यानी विक्रमको दिल्लीपति

कहने लगे। साराश यह है कि, इस शहरका "दिल्ली" नाम बहुत पुराना है।

सन् ७३६ ईस्वीसे दिल्लीके राजाओंका विश्वसनीय हाल मालूम होता है। अनगपाल तुम्वर वशका मूल सस्थापक है। सन् ७३६ ईस्वीमें, इसका राज्याभिषेक हुआ। उसने पहले पहल दिल्लीमें राज्य किया। इसके वाद उसके वशज कन्नौजमे गये। वहासे उन्हें राठोडोंके मूल पुरुष चन्द्रदेवने भगा दिया। इसके बाद दूसरा अनंगपाल दिल्लीमें आया, और वहां उसने अपनी राजधानी बनाई। वहा उसने नया शहर बसाया, और उसके आसपास एक भारी कोट बनवाया। कुतबमीनारके आस-पासके हिस्सेमें प्राचीन इमारतोंके जो चिन्ह देख पडते है वे राजा अनग-पालकी राजधानीके चिन्ह माने जाते है। अनगपालके दिल्लीमें राज्य करनेका समय उपर्युक्त प्राचीन लोहस्तम पर इस प्रकार दिया है—"सवत् दिहली ११०९ अगपाल बही।" इससे यह सिद्ध होता है कि, सन् १०५२ ईस्वीमें राजा अनगपाल दिल्लीमें राज्य करता था। इसके एक शताब्दीके बाद, यानी तुम्वर घरानेके अन्तिम राजा—तीसरे अनग-पाल—के शासनकालमे, अजमेरके राजा विशालदेव चौहानने दिल्ली जीत ली। इस विजयी राजाने अनगपालका सर्वथा नाश नहीं किया; किन्तु उसे एक छोटासा राज्य देकर अपना माण्डलिक बना लिया, और उसके घरानेसे बेटीव्यवहार किया। इन दो घरानोंके विवाहसम्बन्धका फल पृथ्वीराज चौहान है। पृथ्वीराज भारतकी हिन्दू स्वतत्रताका अभि-मानी तथा उसकी रक्षाके लिए लडनेवाला अन्तिम राजा है। उसने दिल्ली में "रायपिथौरा" नामका एक किला बनवाया, और अनगपालके बनवाये हुए कोटके आसपास एक और भारी कोट बनवाया, तथा ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि, जिससे कोई भी शत्रु दिल्ली शहर को न जीत सके। परन्तु भारतवर्षकी स्वतत्रता पर क्रूर कालकी वक्र

दृष्टि हुई, और पृथ्वीराजका अजेय किला एव सुदृढ कोट कुछ भी काम न दे सका, तथा भारतवर्षकी स्वतन्त्रता पृथ्वीराजके शासनकालमें ही रसातलको पहुँच गई! सन् ११९१ ईस्वीमें शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने हिंदुस्तानपर अपना पहला आक्रमण किया। पृथ्वीराजने बडी वीरताके साथ उसका सामना किया। यहा तक कि, पृथ्वीराजने उसे थानेश्वरकी लडाईमें अच्छी तरह हरा दिया। पृथ्वीराजने शहाबुद्दीनकी सेनाका ४० मील तक पीछा किया, और उसकी नाकमें दम कर दिया। परन्तु दो सालके बाद यह मुसलमानी आफत फिर आई, और उसने पृथ्वीराजका पराभव करके उनका वध किया, और दिल्लीका साम्राज्य अपने अधीन कर लिया!

इस प्रकार मुहम्मद गोरीके सेनापति कुतुबुद्दीनने दिल्लीको जीता और वहा मुसलमानी सत्ताका हरा झंडा खडा कर दिया। सन् १२०६ ईस्वीमें जब मुहम्मद गोरीका देहान्त हुआ, कुतुबुद्दीन स्वय दिल्लीके सिंहासनका अधिपति बन बैठा, जोकि भारतके इतिहासमें गुलाम घरानेके प्रस्थापकके नामसे प्रसिद्ध है। आजकल पुरानी दिल्लीके नामसे बस्तीका जो भाग प्रसिद्ध है, वहीं इस बादशाहकी राजधानी, थी जिसके कुछ चिन्ह अभी तक कायम है। वहा कुतुबुद्दीनकी एक मसजिद है। उसके प्रवेशद्वार पर जो शिलालेख है उससे यह मालूम होता है कि, सन् ११९३ इस्वीमें इस विजयशाली बादशाहने दिल्लीमें स्वधर्म स्थापन करनेके उद्देशसे यह मसजिद बनवाई। अस्तु। इसी बादशाहने अपने प्रताप-सूर्यको निरंतर लोगोंकी दृष्टिके सामने रखनेके लिए अपने नामपर "कुतुबमीनार" नामका एक प्रचंड विजयस्तम्भ खडा किया। यह इमारत इतनी अपूर्व और भव्य है कि, समस्त पृथ्वीके लोकोत्तर चमत्कारोंमेंसे एक चमत्कार मानी जाती है। अस्तु।

जिस समय दिल्लीमें गुलामोंका घराना राज्य कर रहा था, उस समय

इसी घरानेमें एक राजनीतिज्ञ स्त्री पैदा हुई, जो कि दिल्लीके इतिहासमें पहली राज्यकर्त्री स्त्रीके नामसे मशहूर है । इसका नाम रजिया बेगम था। जिस तरह हंगरीके देशभक्तोंने यूरुपकी प्रसिद्ध रानी मेरिया थेरिसा का जयजयकार किया, उसी तरह रजिया बेगमकी प्रजाने भी उसका जयजयकार करके उसे "सुल्ताना" की बादशाही पदवी प्रदान की। सन् १२९० ईस्वी तक दिल्लीका राज्य गुलाम वंशके अधीन रहा। इसके बाद जलालुद्दीन खिलजीने अपनी राज्यसत्ता दिल्लीपर प्रस्थापित की। जलालुद्दीनके बाद उसका भतीजा अल्लाउद्दीन खिलजी दिल्लीके तख्त पर बैठा। इसके शासनकालमें मध्य एशियाके मुगल लोगोंने दो बार दिल्लीपर चढाइयाँ कीं, परन्तु उन्हें हार खाकर वापिस लौट जाना पडा ।

सन् १३२१ ईस्वीमें पुन दिल्लीमें राज्य-क्रान्ति हो गई, और वहाँके राज्यसूत्र तुगलक घरानेके हाथमें चले गये। इस घरानेके मूलपुरुष गयासुद्दीन तुगलकने दिल्लीके पूर्वकी ओर, चार मीलके अन्तर पर, एक उच्च स्थान पर तुगलकाबाद नामकी एक स्वतंत्र राजधानी बनाई । इस तुगलक नगरीके कोट, और उसके उध्वस्त मार्ग अभी तक दृग्गोचर होते है । परन्तु आज-कल उस स्थान पर मनुष्योंकी बस्ती बिलकुल नहीं है। सन् १३२५ ईस्वीमें गयासुद्दीनका देहान्त हो गया, और उसके पश्चात् मुहम्मद तुगलक सिंहासन पर बैठा। इसने अपनी राजधानी दिल्लीसे उठाकर देवगिर अथवा दौलताबाद ले जानेका तीन बार प्रयत्न किया। सन् १३४१ ईस्वीमें इब्न बुटा नामका तुर्किस्तानका एक प्रवासी इस बादशाहके दरबारमें आया था। उसने इस बादशाहकी राजधानी का ठीक ठीक वर्णन किया है । उसमें उसने उस नगरकी निर्जन दशा, वहाँकी भव्य इमारतों तथा अन्य कलाकौशलके कार्योंका अच्छा चित्र खींचा है। फीरोजशाह तुगलकने फिर एक बार दिल्लीसे अपनी

राजधानी उठाई, और फीरोजाबाद नामका एक शहर बसाया । आज-कल जहाँ पर हुमायूँ बादशाहकी कबर स्थित है, वहीं यह शहर था, और वहाँ पर अभी तक उसके राज-प्रासादके शेष चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं । इस राज-प्रासादके दक्षिणी-द्वारके समीप चक्रवर्ती राजा अशोकका विजयस्तम्भ दीख पडता है, जो कि सन् ईसवीके तीन सौ वर्ष पहलेका है । इस स्तम्भकी उँचाई ४२ फीट है, और लोग इसे 'फीरोजशाह-की लाट' कहते हैं । इस पर पाली भाषामें लिखा हुआ राजा अशोकका शिला-लेख है । फीरोजशाहने इस स्तम्भको यमुना नदीके तीर पर खिज-राबाद नामक स्थानसे लाकर यहाँ खडा किया । इस विजयस्तम्भसे फीरोजशाहकी राजधानीके स्थलका ठीक ठीक पता चल जाता है ।

सन् १३९८ ईस्वीमें, महमूद तुगलकके शासन-कालमें तैमूरलगने दिल्लीपर आक्रमण किया । उस समय यह महमूद तुगलक गुजरातमें भाग गया, और उसकी सेनाने बे-तरह हार खाई । समस्त दिल्ली नगर द्रव्यलोभी तैमूरके भयकर पजोंमें फँस गया । उस समय लगातार पन्द्रह दिनों तक दिल्लीमें लूटमार और मारकाट होती रही । इसके बाद उस नराधम नर-पिशाचकी तृषा शान्त हुई, और वह असख्य द्रव्य तथा करोडों गुलाम साथ लेकर स्वदेशको लौट गया । तैमूरके दिल्लीसे लौट जानेके बाद दो महीने तक वहाँ राजसत्ताका नाम तक न रहा था । सारा नगर उध्वस्त होकर बेचिराग हो गया था । महमूद तुगलक पुन वहाँ आया, और उसने अपनी राजधानीके गत वैभवको फिरसे स्थापित करनेका थोडासा प्रयत्न किया । परन्तु सन १४१२ ईस्वीमें उसकी मृत्यु हो गई, और उसके साथ तुगलक घरानेका भी अन्त हो गया । आगे चलकर कुछ समय तक, यानी सन १४४४ ईस्वी तक, दिल्लीमें सैयद घराने ने राज्य किया । इसके बाद लोदी घरानेका राज्य आया । उन्होंने दिल्लीसे अपनी राजधानी उठाकर आगरे

में प्रस्थापित की, और उसीको अपना निवासस्थान बनाया। इस घराने के अन्तिम बादशाह इब्राहीम लोदी पर सन् १५२६ ईस्वीमें तैमूर के छठवें वंशज बाबरने आक्रमण किया। पानीपतके विख्यात रण-स्थल पर दोनोंमें घनघोर संग्राम हुआ। परिणाम यह हुआ कि, बाबरने इब्राहीमको हटा दिया। उसने दिल्लीको जीत लिया, और वहाँ मुगल बादशाहतकी नींव डाली। यह बादशाहत सन् १५२६ ईस्वीसे लेकर अन्त तक कायम थी।

यद्यपि बाबर बादशाहने दिल्लीको जीतकर वहाँ अपना राज्य प्रस्थापित कर दिया था, तथापि उसने वहाँ अपनी राजधानी न बनाई। वह सदा आगरेमें रहा करता था, और वहीं सन् १५३० ई० में उसका देहान्त हुआ। यह बादशाह बड़ा विद्वान् एवं उत्तम कवि था। उसने तुर्की भाषामें स्वयं अपना मनोरंजक "आत्मचरित" लिख रक्खा है। मुगल बादशाहत तो लुप्त होगई, परन्तु बाबरका लिखा हुआ आत्मचरित अभी तक कायम है, और उसकी कीर्तिगाथा गा रहा है। मि० बिवरीज नामके एक अंग्रेज महाशयने इस ग्रंथके बारेमें लिखा है कि, "बाबरका आत्मचरित उन अमूल्य ग्रन्थोंमेंसे है, जिनकी महत्ता सर्व-काल अबाधित रहेगी, और उसकी योग्यता सेन्ट आगस्टाइन तथा रूसोके आत्मचरितों अथवा गिबन और न्यूटनके चरितलेखोंके समान ही है। एशियाखण्डमें इसके समान ग्रन्थ केवल यही एक है।"*

इन शब्दोंसे बाबरके आत्मचरितका महत्त्व प्रकट हो जाता है। इस लिए इस ग्रन्थके सम्बन्धमें रसिक अंग्रेज विद्वानोंका यह कौतुकपूर्ण

* His autobiography is one of those priceless records which are for all time, and is fit to rank with the confessions of St Augustine and Rousseau, and the memoirs of Gibbon and Newton In Asia it stands almost alone "

—*Calcutta Review, 1897.*

कथन बिलकुल सच है कि, "बाबरके घरानेकी राजसत्ताका नाश होने पर भी, कालकी वक्र-दृष्टिकी तनिक भी परवा न करते हुए, बड़े गर्वसे यह कहते हुए, कि 'देखो, मै ज्यों का त्यों अभी तक कायम हूँ,' मानो यह ग्रन्थ कालका ही उपहास कर रहा है।" *

बाबरकी मृत्युके पश्चात् उसका पुत्र हुमायूँ मुगल बादशाहतका अधिपति हुआ। उसने दिल्लीमे पुन राजधानी बनाई, और इन्द्रप्रस्थकी प्राचीन भूमि पर एक किला निर्माण किया। वह अभी तक 'पुराना किला' के नामसे प्रसिद्ध है। सन् १५४० ईस्वीमें अफ़गान मत्री शेरशाहने हुमायूँको भगा दिया, और स्वय दिल्लीका बादशाह बन बैठा। उसने दिल्लीके चारों ओर फिर एक भारी शहरपनाह बनवाया। इस प्रचड किलेबन्दीका 'लालदरवाजा' नामक एक चिन्ह अभी तक शेष रह गया है। शेरशाहकी मृत्युके बाद उसका बेटा सलीम गद्दी पर बैठा। उसने सलीमगढ नामक एक किला बनवाकर अपना नाम अजरामर कर लिया है। सन् १५५५ ई० में हुमायूँ बादशाहने फिर दिल्ली पर चढाई करके अपना राज्य वापिस ले लिया। परन्तु छ महीनेके भीतर ही उसकी मृत्यु हो गई। दिल्लीमें उसकी कबर बड़ी प्रसिद्ध है, और वह उत्तम कलाकौशलका दर्शनीय स्थान है। हुमायूँ बादशाहके पश्चात् उसका पुत्र अकबर दिल्लीके सिहासन पर आरूढ हुआ।

अकबर दिल्लीके समस्त बादशाहोंमें उत्तम था। उसकी गणना बहुत अच्छे राजाओंमें की जा सकती है। उसकी उत्तम राज्यव्यवस्था, न्याय-निपुणता, प्रजाहितदक्षता, आदि बातें प्रसिद्ध ही है। परन्तु इन

* The power and pomp of Babar's dynasty are gone, the record of his life—*the Littera Scripta* that mocks at time—remains unaltered and imperishable"

—*S Lane-poole*

गुणोंके अतिरिक्त, उसमें सब प्रकारके धर्मोंके साथ साहिष्णुता (Toleration) रखनेका गुण अत्यन्त प्रशसनीय था। उसने सब धर्मके लोगोंके साथ समभावसे वर्त्ताव किया। इसलिए सब जाति और धर्मके लोग उसका धन्यवाद गाते रहे। इस बादशाहको विद्वानोंसे बडा प्रेम था। उसके दरबारमें फैजी, अबुल फजल, आदि बडे नामी पडित थे। अकबरने इन विद्वानोंसे महाभारत, रामायण, इत्यादि पौराणिक ग्रन्थोंका तथा बीजगणित, लीलावती, इत्यादि गणितशास्त्रके ग्रन्थोंका फारसी भाषामें अनुवाद कराया। इसके अतिरिक्त, उसकी सभामें ब्राह्मण, यहूदी, पारसी और ईसाई आदि धर्मोंके विद्वान् पडित थे। इन सब धर्मोंके तत्त्वोंको जानकर उसने यह धर्मसिद्धान्त निश्चित किया था कि,

"There was no god but God, and that Akbar was his Calif."

अर्थात् ससारमें एक परमेश्वरके सिवा दूसरा जगन्नियन्ता नहीं, और उस परमेश्वरके धर्मका शासन करनेवाला सिर्फ अकबर है। उसने गोहत्या बन्द कर दी, हिन्दू और मुसलमानोंको एकताके सूत्रमें बद्ध किया, और स्वय जोधपुर तथा जयपुरके राजपूत राजाओंकी कन्याओंसे ब्याह करके उनके अन्त करणमें अपने प्रति प्रेम-भाव उत्पन्न कर दिया। उसके शासनकालका आदर्शरूप ग्रन्थ "आईने अकबरी" बहुत प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थसे यह अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि, अकबरके शासन-कालमें कौन कौनसे सुधार हुए थे। उसके शासन-कालमें दिल्लीके सिंहासनको जो महत्त्व प्राप्त हुआ था वह दूसरे किसी भी बादशाहके शासन-कालमें प्राप्त नहीं हुआ। दिल्लीके बादशाहके लिए, पूज्यभाव और आदरका दर्शानेवाला 'दिल्लीश्वर' नामक जो विशेषण प्राप्त हुआ है, उसका आरम्भ इसी सर्वश्रेष्ठ सद्गुणसम्पन्न नृपतिसे हुआ। बर्नियर और परचास नामक यूरोपियन प्रवासियोंने अपने प्रवास-वृत्तान्तोंमें अकबरके

बारेमें बहुत प्रशसापूर्ण लेख लिखे हैं । उनका आशय यह है कि, अकबर बादशाह अत्यन्त सुस्वभावी था। उसका राजतेज बडा विलक्षण था। उसके शत्रु उसके प्रतापके आगे भयभीत होते थे, परन्तु दीनजनोंके लिए उसके अन्त करणमें दयाका भारी स्रोत वहता था, और उनके लिए वह एक सुगम आश्रयस्थान था । कलाकौशलकी ओर उसका बडा ध्यान रहता था, और वह प्रजा पालनको ही अपना एक मात्र कर्तव्य समझता था। इस प्रकार विदेशियों तक ने जब उस नृपतिकी इतनी प्रशसा गायी है, तब यदि वह हमारे सस्कृत कवियोंके वर्णनका भी एक प्यारा विषय बन गया, तो इसमे कोई आश्चर्यकी बात नहीं । अकबरके बारेमें सस्कृत कवियोंका इस प्रकार वर्णन पाया जाता है —

हस्ताम्भोजमाला नखशशिरुचिरश्यामलच्छायवीचि ।
तेजोग्नेर्धूमधारा वितरणकरिणो गण्डदानप्रणाली ॥
वैरिश्रीवेणिदण्डो लवणिमसरसी बालशैवालजाली ।
वेल्लत्यम्भोधरश्रीरकबरधरणीपालपाणौ कृपाण ॥ १ ॥

वीर त्व कार्मुक चेदकबर कलयस्युग्रटकारघोष ।
दूरे सद्य कलका इव धरणिभृतो यान्ति ककालशेषा ॥
शकापन्नश्च कि कारणमिति मनसा भ्रातिपकायितेन ।
त्यक्त्वाहकारमकाद्विसजाति गृहिणी र्पि च लकाधिनाथ ॥२॥

कर्णाट देहि कर्णाधिकविधिविहितत्याग लाट ललाट-।
प्रोत्तुग द्राविड वा प्रचलभुजवलप्रौढिमागाढराढम् ॥
प्रस्फूर्जद्गुर्जर वा दलितरिपुव्रघूगर्भवैदर्भक वा ।
गाजी राजीवदृष्टे कुशशतमथवा शाहजल्लालुदीन ॥ ३ ॥

गाजीजल्लालुदीन क्षितिपकुलमणे प्राक्प्रयाणे प्रतीते ।
प्रेयस्य प्रारभन्ते तरलतरगतिर्व्याकुला मगलानि ॥
नेत्राम्भ पूर पूर्णस्तनकलशमुखन्यस्तबालप्रवालाः ।
स्त्रुट्यन्मुक्ताकलापच्युतकुचकुसुमच्छन्नाकीर्णलाजा ॥४॥

इस वर्णनसे अकबरकी योग्यता व्यक्त होती है।

सन् १६०५ ईस्वीमें, अकबरकी मृत्युके बाद, उसका पुत्र 'जगज्जेता' जहाँगीर दिल्लीके सिंहासन पर आरूढ हुआ। अकबर बादशाह और जहाँगीर, दिल्लीमें अधिक न रहकर, मुख्यत आगरा, अजमेर और लाहोरमें रहा करते थे। इस लिए उनके शासन-कालमें दिल्लीकी महत्ता वर्णन करने योग्य न बढी। परन्तु सन् १६२७ ई० के बाद जब जहाँगीरका बेटा शाहजहाँ दिल्लीके तख्त पर बैठा, तब उसने दिल्लीको अपूर्व शोभा प्राप्त कराई—उसने उसे एक अद्वितीय नगर बना दिया। इस बादशाहको भव्य और सुन्दर इमारतोंका बेहद शौक था। इस लिए इसने दिल्लीमें 'शाहजहानाबाद' नामक एक नया शहर बसाया। आजकल जिसे 'नई दिल्ली' कहते हैं, वह इस बादशाहके लहरी स्वभावका दर्शक है। दिल्लीका किला, उसके भव्य, रमणीय तथा नेत्रानन्ददायक राज-प्रासाद, वहाँकी जुम्मा मसजिद और जमनाकी नहर, इत्यादि अनेक काम इसी बादशाहके शासन-समयमें हुए है। इन सुन्दर और दर्शनीय इमारतोंके अतिरिक्त इस बादशाहने आगरेमें अपनी प्राणप्रिय रानीके स्मरणार्थ जो अपूर्व इमारत खडी की है, उसकी बराबरी संसारकी एक भी इमारत न कर सकेगी। आगरेके 'ताजमहल' का सिर्फ नामोच्चार करते ही ऐसा मालूम होने लगता है, मानो सारी कुशलताकी परमावधि करके ससारकी अखिल सुन्दरता यहाँ भर दी है। इसी बादशाहने रत्नजटित मयूरसिंहासन बनवाकर अपने अपार वैभवसे समस्त राष्ट्रोंके नेत्रोंको चकाचौधमें डाल दिया था।

इस बादशाहके पश्चात् औरंगजेब दिल्लीका अधिपति हुआ। यह बडा धर्म-विक्षिप्त मनुष्य था, और इसे समस्त भारतवर्षमें मुसलमानी धर्मके प्रचार करनेकी महत्त्वाकाक्षा बहुत ही सताती रहती थी। इसके धार्मिक अत्याचार और अत्यन्त लोभके कारण सारी प्रजा त्रस्त होगई।

इसीके शासन-कालमें हिन्दू-धर्माभिमानी छत्रपति श्रीशिवाजीमहाराज महाराष्ट्रमें उदय हुए, और उन्होंने एक स्वतंत्र राज्यकी स्थापना की। औरंगजेबका सारा जीवन मुख्यत दक्षिणमें मराठों तथा बीजापुर और गोलकुंडाके बादशाहोंसे लडने-झगडनेमें ही व्यतीत हुआ, जिससे वह दिल्लीके वैभवको विशेष रूपमें नहीं बढा सका। औरंगजेब बादशाहने छत्रपति शिवाजी महाराजको एकबार दिल्लीमें लाकर कैद किया, जहाँसे उन्होंने बडी युक्तिके साथ अपना छुटकारा कर लिया। इस इतिहास-प्रसिद्ध घटनासे मराठोंकी दिल्लीसे विशेष पहचान होगई। सन् १७०७ ईस्वीमें औरंगजेब हताश होकर मर गया, और उसके पश्चात् मुगल बादशाहतका सूर्य अस्त होने लगा।

औरंगजेबके बाद जो जो बादशाह दिल्लीके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए, उनमें समस्त साम्राज्यको अपने अधीन रखनेका पराक्रम न था, अतएव दिल्लीपतिकी सत्ता विगलित होगई, और "जिसकी लाठी उसकी भैंस" की कहावतके अनुसार सरदार लोग सर्वसत्ताधारी बनकर राज्यकार्य करने लगे। दिल्लीके दरबारमें परस्पर मत्सर, राज्यतृष्णा और अधिकारलालसाका साम्राज्य फैल जानेसे अन्य लोगोंको वहाँ प्रवेश करनेका अवसर मिल गया। मराठोंके मुख्य प्रधान बालाजी विश्वनाथ और उनके पुत्र बाजीराव पेशवाने दिल्ली पर चढाइयाँ कीं, और वहाँके नामधारी बादशाहोंसे मराठोंके लिए "चौथ" तथा "सरदेशमुखी" की सनदें प्राप्त कर लीं। सन् १७३९ ईस्वीमें दिल्लीकी सम्पत्ति पर जलनेवाला ईरानका बादशाह नादिरशाह दिल्ली पर चढ आया। उसने बडे विजयानन्दसे मुगल राजधानीमें प्रवेश किया, और तीन सदियोंके पहले तैमूरलंगने जो लूटमार और मार-काट की थी, उसका स्मरण मानो फिरसे जागृत करनेके लिए नादिरशाहने दिल्लीमें वही दृश्य आरम्भ कर दिया। लगभग ५८ दिनों तक दिल्लीमें अमीर और गरीब

इस वर्णनसे अकबरकी योग्यता व्यक्त होती है।

सन् १६०५ ईस्वीमें, अकबरकी मृत्युके बाद, उसका पुत्र 'जगज्जेता' जहाँगीर दिल्लीके सिंहासन पर आरूढ हुआ। अकबर बादशाह और जहाँगीर, दिल्लीमें अधिक न रहकर, मुख्यत आगरा, अजमेर और लाहोरमें रहा करते थे। इस लिए उनके शासन-कालमें दिल्लीकी महत्ता वर्णन करने योग्य न बढी। परन्तु सन् १६२७ ई० के बाद जब जहाँगीरका बेटा शाहजहाँ दिल्लीके तख्त पर बैठा, तब उसने दिल्लीको अपूर्व शोभा प्राप्त कराई—उसने उसे एक अद्वितीय नगर बना दिया। इस बादशाहको भव्य और सुन्दर इमारतोंका बेहद शौक था। इस लिए इसने दिल्लीमें 'शाहजहानाबाद' नामक एक नया शहर बसाया। आजकल जिसे 'नई दिल्ली' कहते है, वह इस बादशाहके लहरी स्वभावका दर्शक है। दिल्लीका किला, उसके भव्य, रमणीय तथा नेत्रानन्ददायक राज-प्रासाद, वहाँकी जुम्मा मसजिद और जमनाकी नहर, इत्यादि अनेक काम इसी बादशाहके शासन-समयमें हुए है। इन सुन्दर और दर्शनीय इमारतोंके अतिरिक्त इस बादशाहने आगरेमें अपनी प्राणप्रिय रानीके स्मरणार्थ जो अपूर्व इमारत खडी की है, उसकी बराबरी ससारकी एक भी इमारत न कर सकेगी। आगरेके 'ताजमहल' का सिर्फ नामोच्चार करते ही ऐसा मालूम होने लगता है, मानो सारी कुशलताकी परमावधि करके ससारकी अखिल सुन्दरता यहाँ भर दी है। इसी बादशाहने रत्नजटित मयूरसिंहासन बनवाकर अपने अपार वैभवसे समस्त राष्ट्रोंके नेत्रोंको चकाचौंधमें डाल दिया था।

इस बादशाहके पश्चात् औरंगजेब दिल्लीका अधिपति हुआ। यह बडा धर्म-विक्षिप्त मनुष्य था, और इसे समस्त भारतवर्षमें मुसलमानी धर्मके प्रचार करनेकी महत्त्वाकाक्षा बहुत ही सताती रहती थी। इसके धार्मिक अत्याचार और अत्यन्त लोभके कारण सारी प्रजा त्रस्त होगई।

और स्वय अपने लिए आलीजाह बहादुरकी पदवी प्राप्त कर ली। इस समयसे दिल्लीमें मराठोंकी पूर्ण सत्ता जम गई, और दिल्लीकी रक्षाके लिए वहाँ मराठोंकी एक सेना रहने लगी। महादजी सेंधियाके दामाद लाडोजी शितोले देशमुख कुछ काल तक स्वय दिल्लीके सूत्रधार थे। ग्वालियरमें शितोलोंको 'राजराजेन्द्र रुस्तमे जग बहादुर' की जो पदवी चली आरही है, वह दिल्ली-विषयक मराठोंकी प्रभुता बतलाती है।

निस्सन्देह महादजी सेंधियाके जमानेमें दिल्लीके पदपर मराठोंका पूर्ण अधिकार होगया, परन्तु इसके बाद बहुत जल्द मराठोंकी सत्ताका ह्रास होने लगा, और आगे चलकर शीघ्र ही अंग्रेजोंकी प्रबलता बढ गई। उनकी सेनाने दिल्लीमें दौलतराव सेंधियाका पूर्ण पराभव कर दिया, और सन् १८०३ ईस्वीके मार्च महीनेकी चौदहवीं तारीखको लार्ड लेकने दिल्लीपर अपना अधिकार जमाकर वहाँके बादशाहको अपने आश्रयमें लेलिया। आगामी वर्ष (यानी सन् १८०४ ई० में) यशवन्तराव होल्करने दिल्लीपर चढाई करके वहाँके अँगरेज रेजीडेंट कर्नल (आगे चलकर सर डेविड) आक्टरलोनीसे टक्कर दी, और उससे दिल्ली छीन लेनेका प्रयत्न किया। परन्तु उस समय लार्ड लेककी सहायता उसे तत्काल प्राप्त हो जानेके कारण वहाँसे अंग्रेजोंकी सत्ताका नाश नहीं हुआ। उस समयसे अँग्रेजोंने दिल्लीके बादशाहके नाम पर राज-कारबार चलाना आरम्भ कर दिया।

सन् १८०४ ईस्वीमे दिल्लीमें अँग्रेजोंकी राजसत्ताके आरम्भ हो जानेके बाद दिल्लीका बादशाह सिर्फ नामधारी-बादशाह रह गया, वह अँगरेजोंके हाथका कठपुतला बन गया, और दिल्लीके किलेमें तथा वहाँके राज-प्रासादोंमें ही उसकी सत्ता चलने लगी। सन् १८०६ ईस्वीमें दूसरे शाह-आलमका शरीरान्त हुआ, और उनके अनन्तर अकबरशाह दिल्लीके नामधारी सिंहासनका अधिष्ठाता हुआ। इसे अँग्रेजोंसे १५ लाख रुपये

दोनों बराबर लूटे जा रहे थे । अन्तमें जब दिल्लीके लोग बिलकुल निर्धन और त्रस्त होगये, तब नादिरशाहने लूट-मार बन्द की । एक मुसलमान इतिहासकारका अनुमान है कि, जिस समय नादिरशाह स्वदेशको लौटा, उस समय वह अपने साथ नौ करोडकी सम्पत्ति लेगया था । दिल्ली की बादशाहतके बिलकुल कमजोर हो जानेके कारण, उस पर आक्रमण करके उसे हस्तगत करने, और पूर्व-कालके इन्द्रप्रस्थका जीर्णोद्वार करके, उस पवित्र स्थान पर हिन्दू राज्यकी पुन: स्थापना करनेके उद्देश्य से मराठोंने शीघ्र ही अपना ध्यान दिल्लीकी ओर आकृष्ट किया । परन्तु मराठोंसे हार खाकर अपनी बादशाहत गमाना दिल्लीके नामधारी बादशाह तथा उसके सूत्रधारी राजनीतिज्ञोंको इष्ट नहीं था, अतएव उन्होंने अहमदशाह दुर्रानीकी सहायता लेकर पानीपतके रण-स्थलमें मराठोंसे भयकर लडाई छेड दी । दुर्भाग्यवश इस लडाईमें मराठोंका पूर्ण पराभव होगया, और उनके समस्त रथी और महारथी नष्ट होगये । इन्द्रप्रस्थके राज्यकेलिए कौरवों और पाण्डवोंका जिस तरह भारतीय युद्ध हुआ, उसी तरह दिल्लीके तख्तके लिए यह पानीपतका संग्राम है । इस युद्धमें अपरिमित हानि होनेके कारण मराठोंका राष्ट्र कुछ कालके लिए उत्साहशून्य होगया । परन्तु किसी कविकी इस उक्तिके अनुसार, कि “ काटा हुआ वृक्ष और भी जोरसे उठता है, ” वह राष्ट्र फिर उत्साहपूर्वक उन्नतावस्थाको प्राप्त होगया, और महादजी सेंधिया इत्यादि महाराष्ट्र वीरोंने मुगल और रुहेलोंसे बदला लेकर, दिल्लीके बादशाह शाहआलमको अपने अधीन कर लिया, और सन् १७७१ ई० में इन्द्रप्रस्थपर हिन्दू साम्राज्यका झडा फिर एक बार फहराकर, अपने हाथसे उस बादशाहको सिंहासन पर बैठाया । सन् १७८९ ईस्वीमें गुलाम कादिर और महादजी सेंधियाका युद्ध हुआ, जिसमें महादजीने दिल्लीपतिको खुश कर दिया, और उससे पेशवाओंके लिए एक बहुत बडा अधिकार

देते है। किलेमें एक बडा बाग है, जिसमें बादशाहके रहनेके महल तथा उसका जनानखाना है। इन इमारतोंको छोडकर बाकी स्थान देखनेकी जिन्हें इच्छा हो, वे वहाँकी आज्ञा लेकर उनको देख सकते है। शहरके रास्ते अच्छे है, और उनके दोनों ओर उत्तम इमारतें बनी हुई है। वहाँ अनेकों जातिके व्यापारी रहते है, और उनका व्यापार भी खूब चलता है। शहरसे जमनाकी नहर बह रही है। उसपर कहीं कहीं घाट बँधे हैं, और इधरसे उधर जानेके लिए थोडे थोडे अन्तर पर पुल बने हैं। इस सारी शोभाका अवलोकन कर मनुष्य चकित हो जाता है। शहरमें अनेक प्रकारकी तारकशी और नक्काशीकी कई अच्छी अच्छी चीजें मिलती है। शहरमें जुम्मा मसजिद नामका मुख्य स्थान है। इस स्थानपर जानेके लिए हिन्दुओंको मनाही है। मसजिदके बाहर सायकालको उत्तम प्रकारके कपडोंका व्यापार होता है, और अनेक प्रकारके पक्षी बिकनेके लिए आते है। वहाँ चाँदनी चौक नामक एक स्थान है, जहाँ जवाहिरोंका सौदा होता है। शहरमें प्राय मुसलमान ही अधिक है। सिर्फ किलेमें ही बादशाह की हुकूमत उस समय चलती थी, और बादशाहके द्वारा नियुक्त किये गये कर्मचारी वहाँके झगडोंका निबटेरा किया करते थे।" इस वर्णनसे जान पडता है कि, बहादुरशाहके जमाने तक दिल्ली शहरका व्यापार और वैभव पूर्णरूपसे नष्ट नहीं हो पाया था, किन्तु थोडाबहुत अवश्य कायम था।

कम्पनी-सरकारने दिल्लीपर अपना अधिकार जमाकर वहाँके बादशाहको अपने अधीन कर लिया था, तथापि बादशाहकी इज्जत और प्रतिष्ठामें उसने कुछ भी न्यूनता नहीं होने दी थी। सारे हिन्दुस्थानका राज्य-प्रबन्ध दिल्लीके बादशाह बहादुरशाहके मातहत रहकर किया जाता था। इस बादशाहका बडप्पन कैसा रखा गया था—इसका वर्णन एक ग्रन्थकारने बहुतही अच्छा किया है। वह कहता है —

वार्षिक पेन्शन मिलती थी। इसके शासन-कालमें बिशप हिबर नामक एक यात्री दिल्ली आया था। उसने उस समय बादशाहसे भेट की थी। उसने बादशाहके बारेमें इस प्रकार उल्लेख किया है:—"अकबरशाहके चेहरेसे उसकी अवस्था लगभग ७४।७५ वर्षकी मालूम होती थी। परन्तु उसकी यथार्थ उम्र ६३ वर्षकी होगी। परन्तु हिन्दुस्थानमें इतनी उम्र बहुत समझी जाती है। उसका स्वभाव बडा अच्छा था, और उसकी वृत्ति बिलकुल शान्त रहती थी। उसकी बुद्धि साधारण थी, परन्तु उसमें शिष्टाचार और आदर-कुशलता विशेष थी।" यह बादशाह सन १८३७ ईस्वीमें परलोक सिधारा, और उसके बाद उसका बेटा बहादुरशाह सिंहासनारूढ हुआ। उसे कवितासे बडा प्रेम था; और वह स्वय कवि था। उसकी कितनीही कविताएँ अभी तक प्रसिद्ध है। इसके शासन-समयमें दक्षिणके सरदार रघुनाथराव विंचूरकर दिल्ली गये थे। उनके प्रवास-वृत्तान्तमें दिल्लीसे सम्बन्ध रखनेवाला यह उल्लेख है—"दिल्ली बहुत बडा और विस्तीर्ण शहर है। सारे शहरके चारों ओर भारी कोट है, और यमुना नदीके किनारे बादशाही किला बना हुआ है। वहाँ बहादुरशाह नामका एक बादशाह रहता था। किलेके बाहरी दरवाजे पर यूरोपियन लोग रहते थे; और उन्हींके हाथमें उस दरवाजेका सारा प्रबन्ध था। किलेमें बादशाही महल है। उन सब पर गुम्बज है, और उनपर सुवर्णके पत्र जडे हुए है। किलेमें बहुत बढिया इमारतें हैं, और बादशाहके दरबार के लिए एक बृहत् स्थान है। वहाँ पर तख्त रखने के चबूतरे पर एक पत्थर का सिंहासन था। वहाँके लोग कहते है कि, पहले इस चबूतरे पर रत्नजटित सिंहासन रहता था। यह स्थान सगमर्मर पत्थरसे अत्यन्त ही सुशोभित निर्म्माण किया गया है। वहाँकी दीवारों पर सुनहली वेलबूटे निकाले गये हैं। यहाँ पर पहले ठौर ठौर पर रत्न जडे थे, जिनके चिन्ह अभी तक दिखाई

देते है। किलेमें एक बडा बाग है, जिसमें बादशाहके रहनेके महल तथा उसका जनानखाना है। इन इमारतोंको छोडकर बाकी स्थान देखनेकी जिन्हें इच्छा हो, वे वहाँकी आज्ञा लेकर उनको देख सकते हैं। शहरके रास्ते अच्छे है, और उनके दोनों ओर उत्तम इमारतें बनी हुई हैं। वहां अनेकों जातिके व्यापारी रहते है, और उनका व्यापार भी खूब चलता है। शहरसे जमनाकी नहर बह रही है। उसपर कहीं कहीं घाट बँधे है, और इधरसे उधर जानेके लिए थोडे थोडे अन्तर पर पुल बने हैं। इस सारी शोभाका अवलोकन कर मनुष्य चकित हो जाता है। शहरमें अनेक प्रकारकी तारकशी और नक्काशीकी कई अच्छी अच्छी चीजें मिलती है। शहरमें जुम्मा मसजिद नामका मुख्य स्थान है। इस स्थानपर जानेके लिए हिन्दुओंको मनाही है। मसजिदके बाहर सायकालको उत्तम प्रकारके कपडोंका व्यापार होता है, और अनेक प्रकारके पक्षी बिकनेके लिए आते है। वहाँ चाँदनी चोक नामक एक स्थान है, जहॉ जवाहिरोंका सौदा होता है। शहरमें प्राय मुसलमान ही अधिक है। सिर्फ किलेमें ही बादशाह की हुकूमत उस समय चलती थी, और बादशाहके द्वारा नियुक्त किये गये कर्मचारी वहॉके झगडोंका निबटेरा किया करते थे।" इस वर्णनसे जान पडता है कि, बहादुरशाहके जमाने तक दिल्ली शहरका व्यापार और वैभव पूर्णरूपसे नष्ट नहीं हो पाया था, किन्तु थोडाबहुत अवश्य कायम था।

कम्पनी-सरकारने दिल्लीपर अपना अधिकार जमाकर वहॉके बादशाहको अपने अधीन कर लिया था, तथापि बादशाहकी इज्जत और प्रतिष्ठामें उसने कुछ भी न्यूनता नहीं होने दी थी। सारे हिन्दुस्थानका राज्य-प्रबन्ध दिल्लीके बादशाह बहादुरशाहके मातहत रहकर किया जाता था। इस बादशाहका बडप्पन कैसा रखा गया था–इसका वर्णन एक ग्रन्थकारने बहुतही अच्छा किया है। वह कहता है —

"Bahadur Shah is really a king, not merely by consent of the Honourable Company, but actually created such by their peculiar letters patent Lord Lake found the grandfather of the present sovereign and Emperor, in rags, powerless, eyeless, and wanting the means of sustaining existence The firmans of the Padshahah made the General an Indian noble, the sword of the latter made the descendant of Tamerlane a Company's King, the least dignified, but the most secure of eastern dominations In public and private, Bahadur Shah receives the signs of homage which are considered to belong to his pre-eminent station The representative of the Governor-General, when admitted to the honour of an audience addresses him with folded hands in the attitude of supplication He never recieves letters, only petitions and confers an exalted favour on the Government of the British India by accepting a monthly present of 80,000 Rupees In return he tacitly sanctions all our acts, withdraws his royal approbation from each and all our native enemies, and fires salutes upon every occasion of a victory achieved our troops Though he may not have been served with all the zeal inspired by that line of Sadi,—' should the prince of noonday say, it is night, declare that you behold the moon and stars,'—he was suffered, however to believe that he was, the lord, of the world, master of the universe, and of the Honourable East India Company, King of India and of the infidels, the supe

rnior of the Govenor-General, and proprietor from sea to sea."—*Travels of a Hindoo*-Page 343

इसका आशय यह है कि, "बहादुरशाह यथार्थमें राजा है। वह कम्पनीकी आज्ञानुसार राज्य नहीं करता, किन्तु कम्पनीकी सनदोंके कारण वह उसके अधीनसा प्रतीत होता है। लार्ड लेकने वर्तमान राजाके पितामह को अशक्त, निर्धन, नेत्र-हीन और निराश्रित पाया था। बादशाहके फरमानके कारण ही जनरल लेक हिन्दुस्थानी उमरावोंमें शामिल किया गया। इधर जनरल लेककी तलवारने तैमूरलङ्गके वंशज बहादुरशाहको कम्पनीका राजा बनाया। भारतका राज्य प्रतिमा-शून्य, परन्तु सुदृढ और सुरक्षित है। सर्वत्र हाट और ग्वासमें बहादुरशाह इज्जतका पात्र है। गवर्नर जनरलका प्रतिनिधि उसके सामने हाथ जोडकर नम्रता-पूर्व्वक खडा होता है। उसकी सेवामें जो कागजात पेश किये जाते है वे दरख्वास्तके बतौर ही दिये जाते है। अँग्रेजी राज्यमें उसको एक महीने में चालीस हजार रुपयेका नजराना मिलता है। उसके एवजमें बादशाहकी सदा कृपा-दृष्टि रहती है। कम्पनीके जितने कानून उसके सामने आते है उन्हें वह पास कर देता है। वह सदा कम्पनीका पक्ष लेता है। बादशाह सदा हमारे देशी शत्रुओंसे भी नाराज रहता है। हमारी सेनाकी विजय पर वह आनन्द मानता है। यद्यपि सादी की यह उक्ति कि—अगर राजकुमार दिनको रात कहे तो तुम्हारा कर्तव्य है कि, तुम भी कह दो, हॉं, हुजूर रात जरूर है, यही नहीं किन्तु चन्द्रमा और तारागण भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं—बहादुरशाहके लिए अक्षरश चरितार्थ नहीं होती, तो भी अंशत वह उसपर अवश्य घटाई जा सकती है। उसको यह विश्वास दिलाया गया था कि, वह सार्वभौम पृथ्वीपति है, और ईस्ट इंडिया कम्पनीका स्वामी तथा समुद्रके एक सिरेसे दूसरे सिरे तकका अधिपति है।"

तात्पर्य यह कि, ईस्ट इण्डिया कम्पनीने पहलेसेही दिल्लीके बादशाहसे जो बर्त्ताव रखा था, उससे उसके अन्त करणमें कोरी बडाईका यह व्यर्थ विचार समा गया था कि, मैं सार्वभौम चक्रवर्त्ती राजा हूँ, और ईस्ट इंडिया कम्पनी मेरी नौकर है । अतएव उसे यदि यह इच्छा हुई कि, सार्वभौमत्व स्थिर रहे, और मेरी इज्जत इसी तरह सतत बनी रहे, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं । दिल्लीके प्रजाजनोंकी दृष्टिमें—यही नहीं, किन्तु हिन्दुस्थानके समस्त लोगोंकी दृष्टिमें—दिल्लीपति सर्वश्रेष्ठ, दूसरा परमेश्वर, माना जाता था । इसलिए अवश्यही उनके अन्त करणमें उसके प्रति पूज्यभाव और अभिमान होगा । परन्तु आगे चलकर जैसे जैसे कम्पनी सरकारकी प्रबलता अधिक होती गई, और वास्तविक सार्वभौमिकता उसके हाथमें आती गई, वैसे वैसे इस नामधारी कठपुतलेको चक्रवर्त्ती राजा मानकर उसके पादपद्मोंमें लीन होनेका विचार कम्पनी सरकारके अधिकारियोंको अप्रयोजक मालूम होने लगा । दिल्लीका पहला रेजीडेन्ट सर चार्ल्स मेटकॉफ बडा राजनीति-कुशल था । वह बादशाहके आदर-सत्कारमें कुछ भी कमी न पडने देता था । परन्तु लार्ड एमहर्स्ट इत्यादि अभिमानी पुरुष बादशाहको इतना सम्मान देना पसन्द नहीं करते थे । उन्होंने अपनेको बादशाहकी बराबरीका समझ कर दरबारमें जूते निकाल कर जाना, तथा बादशाहके चरणोंके निकट बैठना, आदि बातोंको स्वीकार नहीं किया । प्रत्युत, उन्होंने बादशाहके निकट दरबारी मच पर बैठनेका अपना स्वत्व प्रस्थापित किया । आगे चलकर लार्ड बेंटिकने नजरानोंके बारेमें काटकसर की । इसके बाद लार्ड एलिनबरोने इसके भी आगे एक कदम और बढाया । उन्होंने स्वय एक छत्रपति राजाके समान बादशाहसे भेट की, और बादशाहको वार्षिक नजराना देनेकी जो प्रथा थी, उसे बन्द कर दिया, इस कारण बादशाहको विषमता मालूम हुई, और उसका मन उदास हो गया । लार्ड एलिनबरोके बाद लार्ड डलहौसी हिन्दुस्थानके गवर्नर-जनरल हुए । उन्होंने दिल्लीके

बादशाहके व्यर्थ आटम्बरको सदाके लिए तोड डालनेका प्रयत्न किया। बादशाहका औरस पुत्र शाहजादा सन् १८२९ ईसवीमें मर गया। उस समय लार्ड साहबने मृत शाहजादेके पुत्रसे सिंहासन-त्यागका पत्र पहले ही से लिखा लिया, जिससे बहादुरशाह बादशाहके बाद दिल्लीके तख्त पर उसे बैठानेका मौकाही न आवे। इन समस्त अपमानोंके कारण बादशाहको विशेष कष्ट हुआ, और इस दु:खदायक विचारसे उसका अन्तःकरण क्षुब्ध हो गया कि, उसके बाद मुगल बादशाहत बिलकुल रसातलको चली जायगी। उसी दशामें सन् १८५७ का साल आया, जिसने बाहादुरशाह जैसे हताश और सन्तप्त राजवंशीय लोगोंको बलवा मचानेका अवसर प्राप्त करा दिया। उसका भयंकर परिणाम दिल्लीके इतिहासमें लिखा है।

सन् १८५७ ईसवीमें दिल्लीमें जो भयंकर बलवा मचा, उसमें बहादुरशाह शामिल हो गया। इस बलवेसे उसे लाभ तो कुछ न हुआ, परन्तु उसके पुत्र मेजर हडसनकी बन्दूकों द्वारा मारे गये, और स्वयं वह भी अंग्रेजों द्वारा पकड लिया गया। अंग्रेजोंने फौजी अदालतके सामने उसकी तहकीकात की, और उसे सदाके लिए काले पानीको भेज दिया। फल यह हुआ कि, दिल्लीमें रहते हुए उसे जो कुछ थोडा-बहुत वैभव प्राप्त था, वह भी अब बिलकुल जाता रहा, और रंगूनमें सन् १८६२ ईसवीके अक्टूबर महीनेकी सातवीं तारीखको, अत्यन्त विपदावस्थामें, दिल्लीका यह अन्तिम बादशाह काल-कवलित हुआ। इस प्रकार मुगल बादशाहत का समूल नाश हो गया, और वह कालके विश्व भक्षक जबड़ेमें फँस गई। दिल्लीके सार्वभौमिक पदका भोग करनेवाले अनेकों अच्छे और बुरे राजाओंके केवल नाम तथा उनके सुकर्म और कुकर्म मात्र दिल्लीके इतिहासमें दर्ज है, और दिल्ली नगरी आजकल उन राजाओंके भव्य महलों, उनके विशाल मीनारों, उनके अत्युच्च जयस्तम्भों और उनकी भारी मसजिदोंका

प्रदर्शन करती हुई, दर्शकोंके अन्तःकरणमें आश्चर्य और खेद उत्पन्न करा रही है। मार्क्स आन्टोनियसने क्या ही ठीक कहा है—

"O! Mighty Sovereigns! do ye lie so low?
Are all thy conquests, glories, triumphs, spoils
Shrunk to this little measure? Fiar thee well!"

अर्थात् हे श्रेष्ठ राजाओ! आज तुम किस गिरी हुई दशामें वर्तमान हो! क्या तुम्हारे विजय, प्रभुत्व, शान-शौकत और लूटमारका यही अन्त है? तुम्हें अन्तिम नमस्कार है!

राजर्षि भर्तृहरिने भी ऐसी ही उक्ति की है। वे कहते हैं —

सा रम्या नगरी महान् स नृपति सामन्तचक्र च तत्।
पार्श्व तस्य च सा विदग्धपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बानना॥
उन्मत्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते बन्दिनस्ताः कथा।
सर्वं यस्य वशादगात् स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः॥

अर्थात् वह रमणीय नगरी, वह बडा राजा, राजाका वह मडल, उसके पार्श्व भागमें रहनेवाली वह विद्वानोंकी सभा, वे चन्द्रमुखी सुन्दर स्त्रियाँ, वह बलशाली राजपुत्रोंका समुदाय, तथा वे स्तुति करनेवाले भाट और वे अनेक प्रकारकी अच्छी बातें आदि सब जिसकी सामर्थ्यसे लुप्त होकर स्मृतिशेष मात्र रह गयी है, उस कालको नमस्कार है!

दूसरा प्रकरण ।



दिल्लीका किला और मुख्य राजप्रासाद ।



दीवान ए-आम और दीवान-ए-खास ।

जो लोग दिल्ली देखने जाते हैं, उन्हें वहाँके मुख्य मुख्य स्थानोंको देखनेके लिए कमसे कम तीन दिन तो अवश्य ही लग जाते है। इन तीन दिनोंमें एक दिन दिल्लीका प्रसिद्ध किला तथा उसके मुख्य राजमहल और उसके निकटवर्ती अन्य इतिहास-प्रसिद्ध स्थानोंको देखने एव फीरोजाबाद और इन्द्रप्रस्थके दर्शन करनेमें व्यतीत होता है। कोई भी नया मनुष्य जो दिल्ली जाता है, वहाँके राजमहल ही पहले उसके चित्तको मोहित कर लेते है। उनकी सुन्दरता, उनकी भव्यता, उनका तेज, उनकी नक्काशी और उनकी रचना कुछ ऐसी मनोरम है कि, उनकी ओर देख कर, शायद ही कोई मनुष्य हो, जिसका अन्त करण आनन्द और आश्चर्यसे न फूल उठे। इन राजमहलोंका वर्णन करनेके पहले उनका थोड़ासा इतिहास दे देना आवश्यक है।

दिल्लीका किला तथा उसके राजमहल शाहजहाँ बादशाहने बनवाये हैं। एक ऐतिहासिक ग्रन्थसे मालूम होता है कि, उनके बननेमें बीस साल लगे, और उस समयके हिसाबसे पन्द्रह लाख रुपये खर्च हुए। इस किलेका घेरा एक मील है, और उसमें पहले दस-बारह राजमहल थे। परन्तु इस समय उनमेंसे सिर्फ मुख्य मुख्य महल ही कायम हैं, और शेष नष्ट हो गये है। इस किलेमें शहरकी ओरसे दो द्वार है। उनमेंसे एक द्वार पर जयमल और फतहसिह नामक विजयी राजपूत वीरोंकी, दो मूर्तियाँ थीं, जो हाथीपर सवार थीं। ये मूर्तियाँ भारतके शिल्पकारोंने

बनाई थीं। इनके विषयमे यह आख्यायिका प्रसिद्ध है कि, ये दोनों वीर चित्तोडमें अकबरसे बडी शूरताके साथ लडे, और अपनी मातृभूमिके लिए धारातीर्थमें पतन हुए, इस लिए अकबरने उनके स्मरणार्थ इन मूर्तियोंको बनवाया, और उन्हें अपने राज-द्वार पर खडा किया। कोई कहते हैं कि, जहाँगीर बादशाहने ये मूर्तियाँ बनवाई थीं। खैर, किसी भी बादशाहने उन्हें क्यों न बनवाया हो, परन्तु बर्नियर नामक यात्रीने प्रत्यक्ष देखा था कि, वे शाहजहाँके राज-द्वार पर खडी थीं। उसने अपनी भारतीय यात्राके वर्णनमें उन मूर्तियोंकी सुन्दरताकी बडी प्रशंसा की है, और कहा है कि, हिन्दुस्थानमें मनुष्योंकी पहली मूर्तियाँ यही है। उसने अपनी यात्रामें लिखा है कि, "जयमल और फत्ताकी मूर्तियाँ कला-कौशलकी दृष्टिसे बडी मूल्यवान् है। वे लाल रेतीले पत्थरकी बनी थीं, और उनका आकार मनुष्यके आकारके बराबर था। जिन बडे बडे हाथियोंपर ये मूर्तियाँ रखी थीं, वे काले संगमरमरके बने थे। और हौंदे सफेद और पीले संगमरमरोंसे अलंकृत किये गए थे।" *अस्तु।

किलेका दूसरा दरवाजा 'लाहोर दरवाजे' के नामसे प्रसिद्ध है, और वहाँकी खाईका काम अत्यन्त ही दर्शनीय है। स्वयं दरवाजा ही बडा मजबूत तथा अभेद्य है, और उसके ऊपरसे अत्यन्त ही रमणीय दृश्य दिखाई देता है। उसके पश्चिममें जुम्मा मसजिद

* "The statues of Jaymal and Patta are simply valuable as works of art, as they are, perhaps, the only portrait statues that have been erected in India for many centuries They are made of red sand-stone, and are of life-size, while the huge elephants on which they sit are of black marble, and the hinsings are decorated with white and yellow marbles."—*Bernier's Travels*

ौर पूर्वमें शहर तथा मन्दिर देख पडते है । इस लाहोर दरवाजेसे ाँदनी चौक तक बिलकुल सीधा रास्ता जाता है । इस दरवाजेसे ़ेलेमें प्रवेश करते ही प्रथम नकारखाने अथवा नौबतखानेकी इमारत ृष्टिगोचर होती है। इसके बाद 'दीवान-ए-आम' और 'दीवान ए- ास' नामके दो मुख्य राजमहल देख पडते है। ये ही दिल्लीपतियोंके ोकोत्तर प्रासाद है।

दिल्लीमें जो अनेक प्रेक्षणीय स्थल है, उनमें 'दीवान-ए-आम' और दीवान-ए-खास' नामके ये दो बादशाही दरबार मुख्य हैं। ये प्रासाद देहीके किलेके भीतर है । शाहजहाँ बादशाहने यह किला बनवाया था। यह अत्यन्त भव्य और प्रचड है । यह आगरेके किलेकी नाँई सुन्दर है, और सारा किला लाल पत्थरका बना है। यह किला जमना नद्दीके तीर पर स्थित है, और इसका घेरा डेढ मील है । इसके आस- पास एक बृहत् कोट है, जो लगभग चालीस फीट ऊँचा है । इस किलेके मुख्यद्वारको 'लाहोरगेट' कहते थे, परन्तु अब वह उसका नाम नष्ट होकर 'विक्टोरियागेट' हो गया है । उस द्वारके शिरोभाग पर नील-रक्त-शुभ्र-वर्णत्रयमिश्रित-एक छोटीसी ध्वजा फहराती रहती है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि, यह ध्वजा हमारी उस दयालु सर- कारकी है, जिसकी बान है कि, हम सब वर्णोंकी प्रजाके साथ समान बर्ताव करते है। इस प्रवेश-द्वारके भीतर जाते ही पहले अनेक बडी बडी मेहराबें मिलती हैं, और वहाँसे किलेका सारा वैभवशून्य दृश्य दिखाई पडने लगता है । सन् १८५७ के सिपाहीविद्रोहके समय यहाँकी अनेकों सुन्दर इमारतोंके ध्वस हो जानेके कारण सारा किला उजाड हो गया है। तथापि उसकी दीनावस्थाको छिपाकर उसे हराभरा दिखलानेके लिए ही मानो वहाँकी जमीन साफ करके, रास्ते आदि व्यवस्थित करके, थोडेसे वृक्ष लगा दिये हैं, और कई एक-

स्थानोंपर छोटे छोटे बगीचे लगा दिये हैं। राजमहलका सिर्फ दर्शनीय भाग ही सुरक्षित रक्खा है, और शेष कई महलोंका नाश कर दिया गया है। सिर्फ वे ही राजमहल कायम रखे गये हैं जिन्हें स्वाभाविक रीतिसे फौजी अधिकारी काममें ला सके। उनका मिश्र स्वरूप अवलोकन करके दर्शकोंको खेद उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकता! जिन राजमहलोंमें संगमरमरके पत्थरोंका शुभ्र तेज चमकता था, वहाँ सरकारके पब्लिक वर्क्स विभागने अँग्रेजी तरहकी जो मरम्मतकी है, वह अत्यन्त ही विसगत मालूम होती है! जिन राजमहलोंके प्रवेश-द्वारों में अनेकों द्वारपाल सशस्त्र डँटे रहते थे, उनके सामने आज वृक्षोंके गमलोंके सिवा और कुछ नहीं दीख पडता! अस्तु। इस प्रकार समस्त किलेका तेजहीन दृश्य देखकर काल-चक्रकी कुटिल गतिका बारम्बार स्मरण होने लगता है कि, इतनेमें हमारे सामने नेत्राकर्षक, लाल रगकी, खुली हुई, परन्तु अत्यन्त भव्य, इमारत उपस्थित होती है। यही है इतिहास-प्रसिद्ध 'दीवाने आम' नामका दिल्लीपतिका मुख्य दरबार!

यह सुप्रसिद्ध दीवानखाना सुनहले रगके बेल-बूटोंसे सुशोभित किया हुआ पहले अपार वैभवका वासस्थान था। इस दीवान-ए-आमकी सारी छत चाँदी की बनी थी, और उसपर कलाकौशलका बहुत बढ़िया काम किया हुआ था। यहाँके प्रत्येक स्तम्भपर आसमानी रगका चमकदार मुलम्मा चढा हुआ था, और उसमें ठौर ठौर पर सुन्दर पुष्प खुदे हुए थे। इस इमारतकी कुल नक्काशी बहुतही अप्रतिम थी—केवल यही नहीं, किन्तु उसमें कई एक इतिहासप्रसिद्ध घटनाओंके चित्र, अत्यन्त मार्मिक रीतिसे, चित्रित किये हुए थे। जिस समय शाहजहाँ बादशाहने आगरेका ताजमहल बनवाया, उस समय उसने शीराजके प्रसिद्ध कारीगर अमानतखा को उसपर अपना नाम लिखने की आज्ञा दी थी, इसलिए उसने ताजमहलमें एक जगह पर "शीराजका नम्र फकीर

अमानतखा" के शब्द चित्रित करके हिजरी सन् १०४८ लिख दिया है। इसी प्रकार, शाहजहाँ बादशाहने एक यूरोपवासी चित्रकलाविशारद को भी यह आज्ञा दे दी थी कि, इस महलकी चित्र-मालामें वह अपनी स्पेन की पोशाकमें एक तसवीर खींच ले। इस मनुष्यका नाम 'आस्टिन डी बोर्डो' था। इस कुशल कलमबहादुरने हिन्दुस्तानके सब प्रकारके सुन्दर पक्षियोंकी प्रतिकृतियाँ इस दीवानखानेमें चित्रित की थीं। इसके अतिरिक्त, उसमें एक जगह पर एक अत्यन्त तेजस्वी तलवारका चित्र भी खींचा था। इस चित्रका इतिहास यह था कि, एक बार चित्तोडका एक राजपुत्र दरबारमें बैठा था कि, बादशाहके किसी प्यारे मुसलमानने उसका थोडासा अपमान कर दिया। उसी समय उस तेज पूर्ण राजपूत छौनेने अपना खड्ग निकालकर भरे दरबारमें बादशाहके सामने उसका बदला लिया, और जब बादशाहने उससे इसका उत्तर पूँछा, तब उसने, 'लेडी आफ दी लेक' काव्यके 'रॉडरिक डू' की नाई यह तेजस्विता-पूर्ण उत्तर दिया कि —

"I right my wrongs where they are given
Though it were in the court of Heaven"

अर्थात् मै अपनी भूलोंको भी सत्य सिद्ध कर सकता हूँ—चाहे न्यायालय स्वर्गका क्यों न हो।

इस उत्तरको सुनकर दरबारके सारे लोग आश्चर्यमें आगये। अस्तु। इस महलकी सौन्दर्य-मर्यादा यहीं पर समाप्त नहीं होगई। इस महलके मध्यमें दस फुट ऊँचा, संगमरमर पत्थरका, एक चबूतरा है, जिसपर एक बहुतही सुन्दर शिखराकार शिरोभाग बना है। वह स्फटिकके सदृश शुभ्र है, और उसमें शिल्पकारके कलाकौशलकी परमावधि ही होगई है। इस सुन्दर स्थलके मध्यमें दिल्लीपतिका तख्त—जगत्प्रसिद्ध

मयूरसिंहासन—रखा जाता था। मुसलमानी इतिहासमें इस सिंहासनको 'तख्ते ताऊस' कहा है।

इस तख्तका वर्णन जितना किया जाय, उतना थोडा है। दिल्लीके अनेक बादशाहोंने अनेक सिंहासन निर्माण कराये होंगे, परन्तु ऐसा अद्वितीय सिंहासन किसीने भी नहीं बनवाया। यह सिंहासन दीर्घवृत्ताकार था, और उसकी लम्बाई छै फुट तथा चौडाई ४ फुट की थी। इसका सारा ऊपरी भाग हीरा, माणिक, नीलम, पन्ना, पुखराज, इत्यादि अमूल्य रत्नोंका बना हुआ था, और नीचेका भाग सुवर्णका बना था, जिसके दर्शनीय भाग पर हीरे जडे थे। उसमें जो माणिक जडे थे, सिर्फ उन्हींकी सख्या १०८ थी। इसके सिवा जगह जगह पर नील मणि और पुखराजका भी उपयोग किया गया था। उस सिंहासन पर एक सुवर्णवृक्ष बनाकर उस पर एक मोर बैठाया गया था, और ऐसी योजना की गई थी कि, जिससे उसके रत्नजटित डैने अनायास ही सिंहासनासीन बादशाहके ऊपर उडते रहें। मोरके डैनोंकी कारीगरी अत्यन्त अप्रतिम थी। उनपर विविध रंगोंको यथोचित रूपसे दर्शानेके लिए नाना प्रकारके रत्न जडे थे। बादशाहके शिरोभागका छत्र भी हीरे-मोतियोंका था, और उसमें बकुलपुष्पके समान, अत्यन्त तेजस्वी, मोतियोंकी झालर लगी थी। इस मयूरासनके समस्त हीरे गोलकुंडाकी खानके थे, और वे तारकापुंजकी नाईं चमकते थे। इस मयूरासन पर पीछेके द्वारसे आकर बादशाहकी सवारी बडी सज-धजके साथ विराजमान होती थी। इस अद्वितीय मयूर-सिंहासनके कारण दरबारको अप्रतिम शोभा प्राप्त हुई थी। टावर्नियर नामके एक फरासीसी यात्री ने इस सिंहासनका मूल्य लगभग डेढ करोड रुपयेका अनुमान किया है! अस्तु। दिल्लीपति पर कुटिल कालकी वक्रदृष्टि हुई, और सन् १७३९ ईसवीमें ईरानके प्रबल बादशाह नादिरशाहने इस मयूरासनको हस्तगत किया! तथापि

यह दीवान-ए-आम दरबार, उसके बाद भी, बहुत दिनों तक कायम था। परन्तु सन् १७६० ईसवीमें पुण्यपत्तनस्थ, (पूनेके) पेशवा सदाशिवराव भाऊने, पानीपतके युद्धके समय, जोशमें आकर इस पर आक्रमण किया, और सूरजमल जाटके सदुपदेश पर तनिक भी ध्यान न देकर—पहले मुगलोंने जो रायगढके नूतनसस्थापित हिन्दू साम्राज्यके सिंहासनका भग किया था, उसका बदला चुकानेके उद्देशसे—इस भव्य महलकी सारी चॉदीकी सुन्दर छत तोड डाली, और उसके सिक्के बनाकर सैनिकोंको बाट दिये! एक स्थानपर लिखा है कि, इस छतकी कीमत सत्रह लाख रुपये आई थी। इस वैभवालकृत महलके वर्तमान दीन स्वरूपका अवलोकन करतेही किसकी ऑखोंसे दु:खाश्रु न टपक पडेंगे? आजकल वहॉ वह सुवर्णजटित नक्काशी नहीं रही है, और न वहॉ वह मयूरासन ही कहीं दीख पडता है, जिसे देखकर बडे बडे पृथ्वीपति भी दिल्लीपतिके वैभवकी ईर्षानलमें जल मरते थे! जिस संगमरमरके चबूतरे पर यह रत्नासन रखा जाता था, वह निस्सन्देह अभी तक स्थिर है; और अपनी विपदावस्था जतला रहा है! इस पूज्य स्थलके चारों ओर लोहेकी छडें लगा दी गई है, कि जिससे नाना प्रकारके, सभी दर्शकोंका उसमें हस्तस्पर्श न हो सके।

अस्तु। इस दुर्दैव-ग्रस्त 'दीवान–ए–आम' का दर्शन करके दर्शकोंके अन्त करणमें वैभव की क्षणभगुरताके विषयमें अनन्त कल्पनातरगें उठने लगती है, और उनका मन किंचित् अस्वस्थ हो जाता है, कि इतनेहीमें उन्हें 'दीवान–ए–खास' नामकी एक दूसरी मनोरम इमारत देख पडने लगती है। इस इमारतकी स्फटिकतुल्य शुभ्र प्रभा दर्शकोंके नेत्रोंको ऐसा आकृष्ट कर लेती है कि, उन्हें अपनी पूर्व-अवस्थाका सहसा विस्मरण हो जाता है! यथार्थमें, इससे यह सहजहीमें मालूम हो जाता है कि, ससार-चक्रमें फँसे हुए मानव प्राणीको मायापाश किस

प्रकार बारम्बार बद्ध करता रहता है। अस्तु। इस विख्यात 'दीवान-ए-खास' नामक भवनमे जानेकेलिए दर्शकोंको प्रथम एक सुन्दर पुष्प-वाटिकामें प्रवेश करना पडता है। वहाँ जाकर सामने खडे होनेपर यह भास होता है कि, हमारे सामने कोई अत्यन्त धवल, तेज पुज और अपूर्व वस्तु खडी है। इस खास महलका सारा काम अत्यन्त शुद्ध और स्वच्छ एव अति उत्तम सगमरमरके पत्थरका बना है। उसमें भाँति भाँतिके अनेकों रत्न जडे है, और ठौर ठौर पर सुवर्णकी अद्वितीय नक्काशी होनेके कारण, महलको अप्रतिम शोभा प्राप्त होगई है। इस महलके एक ओर जमनानदीका दृश्य दिखाई देता है। एक ओर बागकी शोभा देख पडती है। एक ओर इसका प्रवेश द्वार चमकता है कि, जिस पर सुवर्णांकित न्यायतुलाका चित्र खींचा हुआ है। सायकालके समय इस महलपर जब कभी कोमल, परन्तु आरक्त, सूर्यकिरणोंकी प्रकाश-लहरें परावर्तन पाकर चमकने लगती है, उससमय यहाँ जो तेजोमय दृश्य दृग्गोचर होता है, वह सिर्फ देखते ही बनता है! सचमुच सोचनेकी बात है कि, जिस समय यहाँ सच्चे रत्न विराजते होंगे, उस समय यहाँ कैसी अप्रतिम शोभा दिख पडती होगी। वास्तवमें उसका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है।

इस महलके पूर्वाभिमुख द्वारके शिरोभाग पर फारसी जबानमें यह पद्य लिखा है:—

"अगर फिर्दौस बर-रूए जमीनस्त-
हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त।"

"If on the earth be an Eden of bliss,
It is this, it is this, none but this!"

अर्थात् यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है, तो वह यहीं है, यहीं है, यहीं है! यहाँ पर हमें पं० श्रीधर पाठककी इस कविताका स्मरण होता है —

"यही स्वर्ग सुरलोक यही सुरकानन सुन्दर।
यहिँ अमरनको ओक-यहीं कहुँ बसत पुरन्दर।"
—काश्मीर-सुखमा।

इस सौन्दर्य-मन्दिरमे अनेकों अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुई है। इससे जान पडता है कि, मानों राजकीय परिवर्तनोंका अवलोकन करनेके लिए ही यह महल निर्माण किया गया है। इसी महलमें शाहजहाँ बादशाहने बडी सजधजके साथ सिंहासनारूढ़ होकर दिल्लीका शासन किया था। इसी महलमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके हेमिल्टन साहबको, बादशाहका स्वास्थ्य ठीक कर देनेके उपलक्ष्यमें सैंतीस ग्राम पारितोषिकमें दिये गये; और कम्पनीके मालपर कर माफ करनेकी आज्ञा दी गई थी। इसी महलमें बैठकर औरंगजेब बादशाहने अपने दोनो भाइयों, दारा और मुरादका शिरच्छेद किया था। इसी महलमें नादिरशाहने दिल्लीपति महमूदशाह तुगलकको अपने वश किया था। इसी महलमें गुलाम कादिरने शाहआलम बादशाहकी ऑखें निकलवा कर उसके बेटेका खून किया था। इसी महलमें महादजी सेंधियाने गुलाम कादिरको कैद करके नेत्रहीन बादशाहके सामने पेश किया था, और अपनी बहादुरीके उपलक्षमें दिल्लीपतिसे कई सनदें हासिल की थीं! यही नहीं, किन्तु **गोरक्षाकी सनद** भी इसी दीवान-ए-खास महलमें प्राप्त हुई थी। बंगाल, बिहार और उडीसाके प्रान्तोंकी सनद, यानी सुप्रसिद्ध 'दीवानी' नामका फरमान, इसी महलमें ईस्टइंडिया कम्पनीको दिया गया था! सचमुचही इस महलमें न जाने कितनी महत्त्वपूर्ण और राज्यक्रांतिकी घटनाएँ घटित हुई! सन् १७७३ ईसवीसे लेकर सन् १८०३ ईसवी तक दिल्लीका बादशाह मराठोंके बिलकुल हाथमें था, यही नहीं, किन्तु उस प्रान्त पर सच्चा अमल भी उन्हींका था। ईस्ट इंडिया कम्पनीको यह बात सहन नहीं हुई। उसने बादशाहको स्वतंत्र करनेका

प्रयत्न किया। उस समय लार्ड लेक साहबको " सुमसन-उद्दौला अश-गार-उलमुल्क खान-दौरान-खान जनरल लेक बहादुर फतेहसिंह" नामका जो खिताब प्राप्त हुआ था, वह भी इसी दीवान-ए-खास महल में प्रदान किया गया था। हा! हा! कैसे खेदकी बात है कि, जिस जगह अनेक बादशाहोंका राज्याभिषेक हो, उसी जगह उनका पद-च्युत होना भी बदा हो। जिस राज-महलमें दिल्ली-पतियोंके वैभवको अत्युच्च स्थान प्राप्त हुआ, क्या वहीं उनके राज-वैभवका अन्त भी हो! प्यारे पाठको! तनिक सोचिए तो सही, कैसी परितापजनक कहानी है! कैसा हृदयविदारक दृश्य है! अगरेजी सरकारकी स्वाभाविक दयालुता से मिली हुई पेंशनपर गुजारा न होनेके कारण मृत्युकी मार्गप्रतीक्षा करनेवाले बेचारे वृद्ध बहादुरशाह-दिल्लीके अन्तिम बादशाह-पर जो सन् ५७ के बलवेमें शामिल होनेका अभियोग लगाया गया, और उसकी जॉचके लिए कर्नल डावेस, मेजर पामर, मेजर रेडमंड, मेजर सायर्स और कैप्टन रोडनेका जो कमीशन बैठाया गया, सो भी इसी "दीवान-ए-खास" महलमें! जिस सार्वभौम नृपतिको दूसरे लोगोंका न्याय करना चाहिए, दूसरे यदि उसीके सिंहासन पर बैठकर उसीका न्याय करें, तो बतलाइये इससे अधिक दुर्भाग्यकी बात और कौनसी हो सकती है? हम ऊपर कह चुके है कि, इस महलकी एक ओर मुगल बादशाहोंने न्याय-तुलाका एक चित्र बनाया है, सो उसका केवल यही उद्देश्य है कि, यहाँ जो न्याय दिया जायगा वह बावन तोला पाव रत्ती बिलकुल ठीक ही होगा। इसी न्यायकी तुलाके सामने बैठकर हमारी दयालु अँग्रेज सरकारके उपर्युक्त अधिकारियोंने बादशाहको जो न्याय दिया, वह बिलकुल ठीक होना ही चाहिए! बादशाह पर जो अभियोग लगाये गये थे, उनमें एक यह था कि, इसने अपनेको दिल्लीका बादशाह जतलाते हुए डौंडी पिटवाई! इस, तथा इसी प्रकारके दूसरे अभियोगोंके

कारण, नियमानुसार उसकी जाँच हुई, और उस बेचारेको काले पानीकी सजा दी गई! सन् १८५८ ईसवीके मई महीनेकी ग्यारहवीं तारीखको, लन्दनके सेन्ट जेम्स हॉलमें, आइल्सबरीके एक पार्लमेंटके सभासदने, इस बादशाहकी उस समयकी दशाका, अपनी आँखोंसे देखा वर्णन किया है। वह कहता है—

"I saw that broken down old man, not in a room, but in a miserable hole of his palace, lying on a bedstead with nothing to cover him, but a miserable tattered coverlet As I beheld him, some remembrance of his former greatness seemed to arise in his mind. He rose with difficulty from his couch, showed me his arms, which were eaten into by disease and by flies, and partly from want of water, and he said in a lamentable voice that he had nothing to eat! I will not give any opinion as to whether the manner in which we are treating him is worthy of a great nation, but is this a way in which, as christians, we ought to treat a king?"

अर्थात् "मैं उस जर्जर और अशक्त वृद्ध बादशाहसे मिला था। वह अपने राजमहलमें नहीं, बल्कि एक रद्दी कोठरीमें, एक बिस्तर पर पड़ा था। उसके पास ओढ़नेके लिए एक फटी-पुरानी गुदड़ीके सिवा और कुछ भी नहीं था। ज्यों ही मैंने उसकी ओर देखा, त्यों ही मुझे ऐसा जान पड़ा कि, उसे अपने प्राचीन वैभवका स्मरण हो आया है। वह बड़े प्रयत्नसे अपनी जगहसे उठा, और उसने मुझे अपने हाथ दिखलाये। वे व्याधिसे ग्रस्त हो रहे थे, और मक्खियोंने उन्हें खा डाला था। इसका एक कारण यह था कि, उसे पानी न मिलता था। बड़े करुणास्वरसे उसने कहा कि, मुझे खानेके लिए कुछ भी नहीं

मिलता !! इस रीतिसे जो हम लोग (अंग्रेज) उसके साथ वर्ताव करते है, वह रीति हमारे बृहद् राष्ट्रके लिए उचित है अथवा नहीं–इस पर मै अपनी राय प्रकट नहीं करूँगा। हा, एक ईसाईकी हैसियतसे मै यह पूछता हूँ कि, क्या किसी भी राजाके साथ ऐसा बर्ताव करना उचित है ? ”

अस्तु, इस प्रकार, इस बादशाहकी दीन दशाके बारेमें, बहुत कुछ चर्चा होती रही, ओर अन्तमें वह रगून भेज दिया गया ! सचमुच ही इस दीवान–ए–खासकी अन्य महत्त्वपूर्ण विशेष बाते कोन कौनसी बतलाई जॉय ? इस स्थानको देखकर किसके हृदयमें शोक की लहरे न उठने लगेंगी ?

“ दीवान–ए–खास ” के एक ओर जो एक सुवर्णांकित न्याय-तुलाका चित्र बना है, उसका इतिहास भी बडा मनोरंजक है। शाह-जहा बादशाह इस महलमें बैठकर जब कि न्याय किया करता था, तब यह दिखलानेके लिए कि, वह न्याय सदैव मानो तराजूमें तुला हुआ होगा, उसने यह न्यायकी तराजू तैयार की। इस न्यायतुलाके निकट एक घटा था इस घटेको बजाकर प्रजाजन बादशाहके यहा अपनी अपनी अर्जियें दिया करते थे। कहते है कि, शाहजहॉने यह प्रणाली अपने पितासे ग्रहण की। जहॉगीर बादशाहकी न्याय-प्रणालीसे सम्बन्ध रखनेवाली दो आख्यायिकाएँ प्रसिद्ध है। उनसे मुगल बादशाहोंकी मनोरजक न्याय प्रणालीका अच्छा पता चलता है। वे आख्यायिकाएँ इस प्रकार है —

अकबर बादशाहके पुत्र जहागीरको अपने इन्साफका बडा अभिमान था। गरीब-गुरबे भी बराबर बादशाह तक पहुँच सकें–इस लिए उसने अपने महलमें एक घटा बॉध दिया था। उसमें एक रस्सी बॉधकर उस रस्सीका अन्तिम सिरा किलेके बाहर एक खभेमें बॉध दिया था। जब किसी मनुष्यको खास बादशाहकी सेवामें अपनी अर्जी पेश करनी होती,

तब वह उस रस्सीको खींच देता, जिससे महलमें घंटा बज जाया करता था। ज्योंही घंटा बजता, त्योंही बादशाह घंटा बजानेवालेको बुलाता, और उसे उचित न्याय प्रदान करता था। एक बार एक बैल, जिसकी पीठपर पानीसे भरा मशक लदा था, इस रस्सी बँधे हुए खंभेके पाससे जा रहा था। न जाने उसके मनमें क्या लहर आई कि, उसने अपनी गर्दन खंभेपर रगड दी। फल यह हुआ कि, महलमें घंटा बज गया। जाच करनेपर मालूम हुआ कि, घंटेका बजानेवाला एक बैल है। तब दरबारके लोगोंने हाथ जोड कर बादशाहसे निवेदन किया कि, "खुदावन्द, यह एक गूँगा जानवर है। गर्दन रगड दी। कृपा करके छोड दीजिएगा"। बादशाहने कहा, "नही, इस बैलपर कुछ न कुछ अत्याचार अवश्य हुआ है, इसकी पीठपर पानीसे भरा हुआ जो मशक लदा है उसको तौलना चाहिए। उसको तौलने पर मालूम हुआ कि, मशकमें पाच मन पानी भरा है। इस पर बादशाहने यह आज्ञा दी कि, यह पानी बहुत जियादा है, साढ़े तीन मनसे अधिक पानी मशकमें न भरा जाय। जो कोई भरेगा उसे सजा मिलेगी।"

अब दूसरी आख्यायिका सुनिए। जहाँगीर बादशाह नूरजहाँपर अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यार करता था। वह बडी बुद्धिमती, शूर-वीर और राजकाजमें भी चतुर थी। शिकार खेलनेका उसे बड़ा शौक था। जब उसे अपने कामोंसे छुट्टी मिलती, तब सुबह और शाम दोनों प्रहर वह निशानेबाजीका अभ्यास किया करती थी। दिल्लीका किला जमना नदीके किनारे बना है। उसमें जनानखाना और उसका महल दोनों जमना की ही ओर थे। एक दिन नदीके उस पार चाद लगाकर बेगम साहबा निशाना मार रही थीं। दुर्भाग्यवश उनकी एक गोली चूककर एक धोबीके लग गई, और वह बेचारा अपनी जानसे हाथ धो बैठा। धोबिन रोती-चिल्लाती किलेके दरवाजेके पास आई, और

उसने रस्सी खींचकर घटा बजाया । थोडीही देरके बाद पहरेवालोंने उसको बादशाहके सामने लाकर खडा किया। वहाँ पहुँचतेही धोबिनने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "महाराज, आपके जनानखानेसे एक गोली आई, और वह मेरे पतिके बदनमें घुस गई, जिससे वह मर गया है। कृपा कर इसका न्याय कीजिए।" जाँच करने पर मालूम हुआ कि, स्वय नूरजहाकी गोलीसे ही धोबीके प्राण गये है । यह जानकर बादशाहका चेहरा फीका पड गया। दरबारके सारे लोग एकटक बादशाहके मुँहकी ओर देखने लगे । उनको दिलमें यह जाननेकी बडी भारी इच्छा हुई कि, देखें बादशाह इस धोबिनके साथ क्या न्याय करते है । बादशाहने अत्यन्त शान्तिके साथ एक बन्दूक, बारूद, गोली इत्यादि सामान मँगाया, और बदूकमें गोली-बारूद आदि भरकर उस बदूकको धोबिनके हाथमें दे दिया, और कहा, "हमारे मुसलमानी न्यायशास्त्रके अनुसार तुझे खूनके बदले खून ही मिलना चाहिए। नूरजहाँने तेरे पतिको मारकर तुझे विधवा कर दिया है; इसलिए तू भी उसके पतिको मारकर उसे विधवा बना दे । तेरे हाथमें भरी हुई बन्दूक मौजूद है, और नूरजहाँका पति स्वय मै तेरे सामने उपस्थित हूँ। अतएव बदूक चलाकर मेरे प्राण हरण कर ले।"

बादशाहके इस भाषणको सुनते ही दरबारके समस्त लोग चकित हो गये । धोबिनने हाथ जोडकर प्रार्थना की कि, "महाराज, इस न्यायसे मुझे सतोष है, परतु मैने खून माफ कर दिया।" इस पर बादशाहने उस धोबिनको नूरजहाँसे कई गाँव इनाममें दिलवाये, वे गाँव अभी तक उस धोबिनके वशमें बने है।

इस घटेको बजाकर न्याय-याचना करनेकी प्रणाली उस न्यायतुला-वाले मन्दिरमें बराबर जारी थी। वहाँ बैठकर शाहजहाँ बादशाहने

समय समय पर जो न्याय किये थे उनकी भी अनेक आख्यायिकाएँ प्रसिद्ध है, जिनमेंसे यहा पर एक नमूनेके तौर पर दी जाती है।

एक बार एक मनुष्यने बादशाहकी सेवामें यह अर्जी पेश की कि, "मेरे पिताकी दो लाखकी सम्पत्ति मेरी माताके पास है, और वह मुझे दुराचारी समझ कर उसका कुछ भी हिस्सा नहीं देती। कृपा कर मुझे कुछ दिलवाइए।" बादशाहने उस मनुष्यकी माताको बुलवा भेजा, और उसे अपने पुत्रको पचास हजार रुपये देने तथा सरकारी कोषमें एक हजार रुपये दाखिल करनेकी आज्ञा दी। इस पर उस स्त्रीने निवेदन किया कि, "हुजूर, आपके दर्बारमें न्यायकी तराजू है। इस लिए यहा जो न्याय मिलता है उसके ठीक होनेमें तिलमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता। आप महाराजाधिराज है, आपने मुझे अपने पुत्रको पचास हजार रुपये देनेका जो हुक्म दिया है, सो ठीक ही है, क्योंकि वह मेरे पतिका औरस पुत्र है। परतु हुजूरने मुझे सरकारी कोषमें एक हजार रुपये जमा करनेकी जो आज्ञा प्रदान की है, उसके लिए मेरा सिर्फ यही निवेदन है कि, मुझे कृपापूर्वक यह बतला दिया जावे कि, सरकारसे मेरे पतिका कौनसा नाता है!" उस स्त्रीका यह मार्मिक भाषण सुनकर बादशाहने उसके वे हजार रुपये माफ कर दिये।

इस आख्यायिकासे इस न्याय-तुलाका उद्देश्य और वहाँके कार्य्यका आदर्श समझमें आ सकता है। अब भी इस न्यायतुलाका सुवर्णाकित चित्र देखनेसे उपर्युक्त आख्यायिकाओंका स्मरण हो आता है।

रंगमहल अथवा मोतीमहल।

यह महल 'दीवान-ए-खास' के नजदीक है। यहाँ पहले शाही जनानखाना था। दिल्लीपतिकी पटरानिया जहा निवास करती थीं, वह स्थान यदि अत्यन्त सुन्दर हो, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। इस महलमें बेल-बूटोंकी सुन्दर नक़ाशी की हुई है। आगरेके ताजमहल

की तरह यहाँ भी विविध रंगोंके पत्थर संगमरमरके पत्थरमें जडे हुए हैं। इससे महलको अद्वितीय शोभा प्राप्त हो गई है। कहते हैं कि, पहले यहाँका सारा काम रत्नजटित था। उस समय इस महलकी सुन्दरता अपूर्व होगी, इसमें सन्देह नहीं। उस समय, समस्त महलमें ठौर ठौर जडे हुए विविध रंगोंके बहुमूल्य रत्न, अपनी उज्ज्वल प्रभासे, वहाँके मूर्तिमान् सुरुचिर स्त्रीरत्नोंके दिव्य तेजको लज्जित करनेका प्रयत्न अवश्य करते थे, इस कार्य्यमें वे कभी भी सफल-मनोरथ नहीं हुए, प्रत्युत उन्हींको स्त्रीरत्नोंके अनुपम लावण्यसे हार खाकर बिलकुल स्तब्ध और निश्चल होना पडता था! इस तेजोमय रंगमहलके आसपास अनेकों आल्हादद्दायक, सहस्र धारावाले फुहारे, सुन्दर पुष्पवाटिकाएँ, रमणीय लताकुंज, और शीतल-मन्द-सुगन्धित वायुके सेवनार्थ विश्रान्ति-स्थान, इत्यादि बडे ही रमणीय बने थे, जो उस स्थलकी सुन्दरता बढाते हुए हृदयको अत्यन्त ही आह्लादित करते थे। आजकल तो इनमेंसे कुछ भी वहाँ नहीं रहा है, सिर्फ यह 'रंगमहल' मात्र खडा है। रसिक पाठकोंको यहा पर यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि, 'मुमताज-महल,' 'जिन्नतमहल' इत्यादि इस महलकी सौन्दर्य्य-लतिकाओंके नामशेष हो जानेके कारण आज यह रंगमहल केवल नामधारी 'महल' रह गया है।

हमामखाने अथवा स्नानगृह।

दीवान-ए-खासके उत्तरकी ओर शाही हमामखाने अथवा स्नानागार बने हैं। इन्हें 'आकाब' कहते हैं। इन स्नानागारोंके तीन कमरे हैं। हरएक कमरेकी धरती पर संगमरमरकी फर्शबन्दी है, जिसके मध्यमें मुख्य स्नानगृह है। इसके आसपासकी नक्काशी अत्यन्त ही सुन्दर है। इस स्नानागारमें पृथ्वीसे पानीकी अनेकों नलिया लाई गई हैं, और उनमें उष्णोदक तथा शीतोदककी उत्तम योजना की गई है। स्नानगृह-

में चारों ओरसे पड़देका प्रबन्ध है। उजेलेके लिए दीवारमें ऊपर कॉच की खिड़कियाँ बनी हैं। ये कॉच धुँधले है, और उनमेंसे सिर्फ प्रकाश आता है, परन्तु भीतरका स्नानविलास बाहरसे किसीको नहीं दिख पड़ता। इस रम्य स्थान पर जाते ही दिल्लीपतिके विलासोंकी अस्पष्ट कल्पना नेत्रोंके सामने खड़ी हो जाती है, और उन विलासोंका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करनेकी लालसा उत्साही अन्त'करणमें उत्पन्न होती है। दीवान–ए–आमके मयूरासनका वर्णन सुनकर, अथवा उसके स्थानको देखकर, कभी किसीको भी, अरबी कथाओंके अबू हुसेनकी तरह, एक दिनके लिए भी, बादशाह बननेकी इच्छा उत्पन्न नहीं होती, अथवा मोतीमहल या रगमहलको देखकर भी, सौन्दर्य-लतिकाओंके साथ नाना प्रकारकी क्रीडा करनेवाले दिल्लीपतिके वैभवसे ईर्षा नहीं होती, परन्तु इन सुन्दर और मनोवेधक स्नानगृहों तथा उनकी उत्तम रचना और योजनाको देखकर शायद ही कोई रगीला दर्शक ऐसा हो जिसके मनमें मुगल बादशाहोंके विलासोंका अनुभव प्राप्त करनेकी इच्छा न होती हो। वहाँके स्वच्छ और दुग्ध-धवल सगमरमरका सौन्दर्य और प्रशस्त तथा प्रगमनशील स्नानागार-रचना शायद ही और कहीं देखनेको मिलेगी! सच है, अपूर्व अपूर्व ही है!।

शाहबाग और शाहबुर्ज।

इन राजमहलोंमें शाहबाग और शाहबुर्ज नामक दो स्थान अत्यन्त ही दर्शनीय थे। इनमेंसे शाहबागके नष्ट-भ्रष्ट हो जानेके कारण उसका पूर्व-रूप अब नहीं रहा है। परन्तु शाहबुर्ज अभी तक कायम है। बर्नियर नामके फरासीसी यात्रीने इस बागको स्वय देखा था। इस बागके नाना प्रकारके सगमरमरके फौवारों और भाँति भाँतिके सगमरमरी जलाशयोंकी अप्रतिम शोभाको देखकर वह विदेशी यात्री आश्चर्यसे चकित हो गया था। इस बागमें शाहबुर्ज नामक एक अठपहलू मण्डप

था। उससे कालिन्दी नदीके रमणीय तटका सुन्दर दृश्य दिखाई पडता था। इस स्थलपर स्वय बादशाह विराजमान होते थे, इसलिए उसके बाहरी और भीतरी दोनों हिस्से सुवर्णके बने थे। सुन्दर तसवीरों और बडे बडे दर्पणोंसे वह सजाया गया था। सन् १७९३ ईसवीमें फ्राकलिन साहबने इस स्थलका दर्शन किया था, जिन्होंने इस तरह उसका वर्णन किया है —

" शाहबाग नामक नृपोद्यानमें एक अठपहलू बॅगला है। उसके ऊपरसे जमनाका दृश्य दिखाई देता है। इस मन्दिरका नाम शाहबुर्ज अथवा बादशाही महल है। इसका भीतरी भाग सगमरमरका बना हुआ है। सन् १७८४ ईसवीमें राजपुत्र जवानबख्त इसी महलकी खिडकीसे कूद कर लखनऊको भाग गया था। इस मन्दिर पर मराठोंके आक्रमण हुए थे, अतएव वह बहुत नष्ट हो गया है। " इसके इकतीस साल बाद हीबर नामके एक यात्रीने इसी स्थलको देख कर इस प्रकार लिखा है — "मैने यहॉका बाग देखा, वह बहुत बडा नहीं था। परन्तु किसी समय यह अत्यन्त सुन्दर और रमणीय रहा होगा। यहाँ पर सन्तरेके पुराने वृक्ष दिखाई पडते थे। गुलाबके गमले और अन्य पुष्प-लतिकाएँ भी यहॉं कई थीं। स्वच्छ सगमरमरकी नालिया बना कर उनके द्वारा सब ओर पानी ले जाते थे। बागमें एक अष्टकोणाकृति सुन्दर मण्डप अथवा उद्यानगृह था। वह बहुत ऊँचा था, और उसकी खिडकियोंसे नगर तथा सरिताका उत्कृष्ट दृश्य दृष्टिगोचर होता था। परन्तु जिस समय हम वहॉं गये थे, उस समय वह सब अस्वच्छ और अव्यवस्थित दशामें था। स्नान-गृह और फौवारे जलरहित अर्थात् बिलकुल शुष्क हो गये थे। उद्यान-मन्दिरकी फर्शबन्दी पर कूडा-कचरा जमा हो जानेके कारण वहॉंकी नकाशी लुप्त हो गई थी, और आसपासकी दीवारोंमें पक्षियोंने अपने घोंसले बना लिये थे।" अस्तु। अब तो यह बाग बिलकुल ही नष्ट हो गया

है। हा, सिर्फ यह 'शाहबुर्ज' नामका स्थल बुरी दशामें मौजूद है। जिस स्थान पर स्वयं दिल्लीपति वायुसेवनके लिए विराजमान होते थे, वहाँ पर अब चमगीदड़ोंका निवास देख कर अवश्य ही उस स्थानको अपने दुर्भाग्य पर खेद होता होगा!

मोती मसजिद।

यह इमारत स्वय बादशाहकी ईश्वर-प्रार्थनाके लिए थी। इसको सन् १६३५ ईसवीमें औरंगजेब बादशाहने बनवाया था, और इसके बनवानेमें १६,००,००० रुपये खर्च हुए थे। यह इमारत है तो छोटी, पर अत्यन्त सुन्दर है। मुख्य इमारत तीन कमानियोंकी बनी है, इन कमानियों और दीवारों पर जो नक्काशी की हुई है, वह बहुत सादी होने पर भी अत्यन्त मनोरम है। इसको देखकर बडे बडे शिल्प-कला-विशारद आनन्दसे डोलने लगते है। उनका कथन है कि, यह मसजिद शिल्प-कलाका एक अद्वितीय रत्न है। इस मसजिदका द्वार पॉच धातुओंके मेलसे बना है, और उसपर अत्यन्त ही कमनीय नक्काशी की हुई है। सन् ५७ के सिपाही-विद्रोहके समय इस मसजिद पर गोलोंकी वर्षा हुई थी, जिससे इसे बहुत बडा धक्का पहुँचा है। बहुत दिनों तक किसी ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया था, इस लिए इसकी दीवारो पर पीपलके कोमल पत्ते दिखाई देने लगे थे। परन्तु अब उसका रूप पलट गया है, और वह फिर पहले जैसी नई दिखने लगी है। इस मसजिदको बनवानेके बाद स्वय औरंगजेब बादशाहने ही इसकी प्राणप्रतिष्ठा की, और उसमें निमाज पढना आरम्भ किया। जब वह इस राजप्रासादमें रहता था, तब खास तौर पर, शुभ्र वस्त्र पहिन कर, वह इस मसजिदमें ईश्वर-प्रार्थना किया करता था। इससे जान पडता है कि, दारा नामक उसके भाईने जो उसे "निमाजी" नाम दिया था, सो बिलकुल उचित था। अब इस मसजिदकी अच्छी मरम्मत हो गई है।

था। उससे कालिन्दी नदीके रमणीय तटका सुन्दर दृश्य दिखाई पडता था। इस स्थलपर स्वय बादशाह विराजमान होते थे, इसलिए उसके बाहरी और भीतरी दोनों हिस्से सुवर्णके बने थे। सुन्दर तसवीरों और बडे बड़े दर्पणोंसे वह सजाया गया था। सन् १७९३ ईसवीमें फ्राकलिन साहबने इस स्थलका दर्शन किया था, जिन्होंने इस तरह उसका वर्णन किया है —

"शाहबाग नामक नृपोद्यानमें एक अठपहलू बॅगला है। उसके ऊपरसे जमनाका दृश्य दिखाई देता है। इस मन्दिरका नाम शाहबुर्ज अथवा बादशाही महल है। इसका भीतरी भाग सगमरमरका बना हुआ है। सन् १७८४ ईसवीमें राजपुत्र जवानबख्त इसी महलकी खिडकीसे कूद कर लखनऊको भाग गया था। इस मन्दिर पर मराठोंके आक्रमण हुए थे, अतएव वह बहुत नष्ट हो गया है।" इसके इकतीस साल बाद हीबर नामके एक यात्रीने इसी स्थलको देख कर इस प्रकार लिखा है — "मैने यहॉका बाग देखा, वह बहुत बडा नहीं था। परन्तु किसी समय यह अत्यन्त सुन्दर और रमणीय रहा होगा। यहॉ पर सन्तरेके पुराने वृक्ष दिखाई पडते थे। गुलाबके गमले और अन्य पुष्प-लतिकाएँ भी यहॉ कई थीं। स्वच्छ सगमरमरकी नालिया बना कर उनके द्वारा सब ओर पानी ले जाते थे। बागमें एक अष्टकोणाकृति सुन्दर मण्डप अथवा उद्यानगृह था। वह बहुत ऊॅचा था, और उसकी खिडिकियोंसे नगर तथा सरिताका उत्कृष्ट दृश्य दृष्टिगोचर होता था। परन्तु जिस समय हम वहाँ गये थे, उस समय वह सब अस्वच्छ और अव्यवस्थित दशामें था। स्नान गृह और फौवारे जलरहित अर्थात् बिलकुल शुष्क हो गये थे। उद्यान-मन्दिरकी फर्शबन्दी पर कूडा-कचरा जमा हो जानेके कारण वहॉकी नकाशी लुप्त हो गई थी, और आसपासकी दीवारोंमें पक्षियोंने अपने घोंसले बना लिये थे।" अस्तु। अब तो यह बाग बिलकुल ही नष्ट हो गया

एक विख्यात किला है, उसी तरह इसे यदि 'टॉवर आफ देहली' कहें, तो कुछ हर्ज नहीं। 'टॉवर आफ लन्डन' नामक किलेमें जिस तरह अनेक राजा और राजनीतिज्ञ लोग कैद थे, उसी तरह देहलीके इस टॉवरमें भी दिल्लीके राजघरानेके बहुतसे राजपुरुष और दिल्लीके दरबारके अनेक सरदार कैदमें रक्खे गये थे। शाहजादा मुराद जब कि शराब-के नशेमें चूर था, एक हाथीपर बिठाकर इसी किलेमें लाकर कैद किया गया था। दाराके छोटे लडके शेखूको, औरगजेबकी बेटीसे विवाह करके, इसी किलेमें कैद किया था। औरगजेबके ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद सुलतानको भी पन्द्रह वर्ष तक इसी दुर्गमें पराधीनताका दुख सहन करना पडा था। इनके सिवा, अन्य कितने चतुर और महत्त्वा-कांक्षी राजनीतिज्ञ यहा आये होंगे, तथा कैदमें पच पच कर मरे होंगे, इसका कुछ पता नहीं। इंग्लैंडके 'टॉवर आफ लन्डन' नामक किलेके कृष्णकृत्योंका वर्णन पढकर जिस तरह पाठकोंकी देह पर रोमाञ्च खडे हो जाते हैं, उसी तरह सलीमगढके किलेका वर्णन पढकर भी पाठकोंको दुःख हुए बिना नहीं रहता। राज्य-लोभ अथवा अधिकारलोभकी प्रबलता के कारण जो अत्याचार हुए हैं, उनका प्रदर्शन करनेके लिए ही मानो 'सलीमगढ' अथवा 'टॉवर आफ लन्डन' अथवा 'बैस्टिली' जैसे उग्र एवं भयानक किले अभी तक विद्यमान है। अहा! जिस भीम-रूपी सलीमगढ की किसी समय वह धाक थी, आज वही बिलकुल दीनावस्थामें दिखाई दे रहा है।

ऊपर जिन स्थानोंका वर्णन किया गया वही दिल्लीके किलेमें मुख्य स्थान हैं। इनके अतिरिक्त वहाँ और भी कई राजमहल थे, परन्तु वे सब आजकल नष्ट-भ्रष्ट हो गये है, और उनकी जगह पर अँग्रेजी पल्टनोंके निवास-स्थान बन गये हैं। दिल्लीके किलेका प्राचीन और भव्य स्वरूप, जितना उसके बाहरके लालरंगके कोटसे और बडी खाईसे, व्यक्त होता है उतना उसके अन्त स्वरूपसे नहीं व्यक्त होता, क्योंकि जबसे वहाँ अँगरेजी राज्यकी स्थापना हुई है तबसे उसमें अनेकों नई इमारतें बन गई हैं, और पुरानी गिरा दी गई है। इतना होने पर भी हमने जिन मुगल इमारतोंका ऊपर वर्णन किया है, वे अभी तक मुगलोंके वैभवकी गवाही दे रही है। अवश्य ही वे दर्शकोंके अन्त.करणको प्रसन्न किये बिना नहीं रहतीं।

सलीमगढ़।

शाहजहाँ बादशाहके महल और जमना नदीके पुलके दरमियानम सलीमगढ नामका एक अत्यन्त प्राचीन किला है। शेरशाहके पुत्र सलीमने इस किलेको बनवाया था, इस लिए इसे सलीमगढ नाम प्राप्त हो गया है। जब हुमायूँ बादशाह पुन दिल्लीको वापिस आया, तब उसे अपने शत्रुके पुत्रका नाम कायम रखना उचित न मालूम हुआ। इसलिए उसने, उस नामको बदल कर, उसका नाम 'नाहरगढ' रक्खा। यह किला मिट्टीका बना है, और अत्यन्त ही बेडौल है। तो भी इसका बाहरी दृश्य अत्यन्त भव्य है। यह किला जमना नदीके प्रवाहमें बना है, इसलिए वह किसी द्वीपके समान दिखाई देता है। इस किलेसे नदीको सरलतापूर्व्वक पार करनेके लिए जहाँगीर बादशाहने पाँच कमानियोंका एक पुल बनवाया था। वह अभी तक कायम है। सलीमगढका किला यद्यपि विशेष दर्शनीय स्थान नहीं है, तथापि उसका इतिहास बड़ा महत्त्वपूर्ण है। लन्दनमें जिस तरह 'टॉवर आफ लन्डन' नामका

द्वार खुले हुए है । पश्चिमकी ओर बिलकुल द्वार नहीं है । वहाँ सिर्फ पत्थरकी एक ऊँची दीवार ही बना दी गई है । जो मुख्य तीन दरवाजे है, उनके तीनों ओर नदीके घाटकी सीढियोंके समान सीधी खुली सीढियाँ है। मुख्य प्रवेश-द्वार पीतलके ढले हुए है, और बहुत भारी तथा मजबूत है। इनमें पूर्वीय द्वार बहुत बडा और अत्यन्त सुन्दर है। इसे हम महा द्वार कह सकते है । इस द्वारसे भीतर जाने पर एक बडा भारी ऑगन मिलता है। ऑगनका विस्तार १४०० घन-गज है । इसमें एक प्रकारके लाल पत्थरकी फर्शबन्दी की हुई है। इस ऑगनके बीचोंबीच सुन्दर संगमरमरका एक बडा हौज है। उसमें चट्टानके प्राकृतिक झरनेका पानी लाया गया है । इस चौरस आँगनमें ५००० मुसलमान प्रार्थनाके लिए एकत्रित हो सकते है। इस इमारतकी मुख्य मसजिद इस मुख्य ऑगनके पश्चिममें है । मक्का चूंकि पश्चिममें है, इसलिए, उसकी दिशाका बोध होनेके लिए, ऐसी रचना की गई है। यह मुख्य मसजिद आयताकार है, जिसकी लम्बाई २०१ फीट और चौडाई १२० फीट है । उसके शिरोभाग पर सुन्दर संगमरमरकी तीन मेहराबें है, जिन पर सोनेका मुलम्मा चढाकर बहुतही बढिया नक्काशी की गई है। इसके दोनों ओर दो मीनारें है । वे १३० फीट ऊँची है, और उन पर छोटेसे, अत्यन्त कमनीय गुम्बज बने है। मसजिदके अग्रभागमे दस दालानें है, और उनपर जो ऊँची तथा अर्ध-वृत्ताकार कमानिया है, वे अत्यन्त सुन्दर है।

इस इमारतके शीर्षभागपर, बढिया संगमरमरपर, काले रंगके पत्थरसे, नस्की भाषाके अक्षर बने हैं। उनमें इस मसजिदके बननेका काल और खर्च लिखा है। उससे यह मालूम होता है कि, इस इमारतके बनानेका काम सन् १६४४ ईसवीसे आरम्भ होकर सन् १६५० ईसवीमें समाप्त हुआ है। इस इमारतके लिए लगभग छे वर्ष तक ५००० लोग काम करते

तीसरा प्रकरण ।

दिल्लीकी जुम्मा मसजिद ।

दिल्लीके राजप्रासादको देखनेके बाद नगरमें प्रवेश करतेही, पहले पहल यह भारी मसजिद दिखाई पडती है । हिन्दुस्तानकी बढ़िया इमारतोंमेंसे यह भी एक है । ईसाइयोंके लिए जिस तरह सेंटपीटर्सका गिरजाघर है, अथवा हिन्दुओंका जैसे जगन्नाथजीका मन्दिर है, वैसीही मुसलमानोंकी यह जुम्मा मसजिद है । आगरेका 'ताजमहल' सबसे श्रेष्ठ है । उसके बाद यदि इस मसजिदकी गणना की जाय, तो कुछ अनुचित नहीं । यह सारी इमारत लाल रंगके पत्थरसे बनी है, और बीच बीचमें उसपर संगमरमरकी कारीगरी की गई है, अतएव ऐसी भली मालूम होती है, मानो लाल रंगके दुशाले पर सुन्दर बेल-बूटे कढे हों । यह सारी इमारत यदि बढिया संगमरमरकी बनी होती, तो आगरेके 'ताज' के समान यह भी अपनी धवल प्रभासे लोगोंको वैसाही मोहित कर सकती थी । अस्तु । यह सारी इमारत यद्यपि संगमरमरकी नहीं बनी है, तो भी इससे यह न समझना चाहिए कि, इसकी बनावट सौन्दर्यमें कुछ न्यून है । यही नहीं, किन्तु समस्त दिल्ली नगरमें सबसे ऊँची इमारत केवल यही एक है, और यह कहना भी अत्युक्ति न होगा कि, यह इमारत अपनी भव्यता और अपनी आरक्त प्रभासे शेष सब इमारतोंको लज्जित कर रही है ।

यह मसजिद एक ऊँची चट्टान पर बनी है, और इसके लिए वह चट्टान तोडकर साफ की गयी है । इस मसजिदके चारों ओर चार मार्ग हैं । परन्तु इसमें प्रवेश करनेके लिए सिर्फ उत्तर, दक्षिण और पूर्वकी ओरसे

आया करते थे। उस समय यहाँका दृश्य बहुत ही विचित्र देख पडता था। प्रति शुक्रवारको यहॉ पर ईश्वरकी प्रार्थना हुआ करती थी। मुसलमान लोग चूंकि धर्मके लिए पागल होते हैं, इस लिए इस मसजिदमें एकत्रित होने पर, यह मसजिद उनमे चाहे जैसी उत्तेजना उत्पन्न कर देनेका सामर्थ्य रखती थी। सन् ५७ के बलवेके समय, सितम्बर महीनेके एक शुक्रवारको यहॉ 'खुतबा' पढा गया, और दिल्लीके सब मुसलमानोंने उस समय यह घोषणा कर दी कि, 'खल्क खुदाका, मुल्क बादशाहका, अमल बहादुरशाहका'। मतलब यह कि, उस भयकर प्रसग में यह मसजिद स्वधर्माभिमान तथा स्वदेशाभिमानकी प्रेरणा करनेवाली एक मुख्य जगह बन गई थी। परन्तु वह प्रेरणा क्षणभगुर हुई; और राज-द्रोही बलवाइयोंका शीघ्र ही अन्त हो गया। बलवेके बाद यह चर्चा छिडी कि, यह मसजिद बिलकुल गिरा दी जावे। परन्तु सरकार-ने मुगल रियासतकी इस बडी इमारतको नष्ट करके ससारमें अपनी अपकीर्ति नहीं कराई। यह बहुत अच्छा हुआ। बिशप हीबर नामक शाख़ने जुम्मा मसजिदकी अलौकिक रचना देखकर बहुत ही आनन्द प्रकट किया है—उसने कहा है कि, "इस मसजिदका आकार, उसकी दृढता और उसकी बनावटकी उत्तमताको देखकर मेरे मन पर जैसा प्रभाव हुआ, वैसा हिन्दुस्तानकी दूसरी इमारतोंके देखनेसे नहीं हुआ*।" रसेल नामके एक दूसरे यूरोपीय महाशयने लिखा है कि, "इस इमारतकी विशुद्ध शोभा, उसकी रचनाका परिमाण-सौन्दर्य्य, और भवनसम्बन्धी ऊची कल्पनाशक्तिकी, यदि हमारे ईसाई प्रार्थना-मन्दिरके क्षुद्र और दरिद्री भवनसे तुलना की जाय, तो उससे हमे अपना सिर नीचा

* "The size, the solidity, and rich materials of the Jumma Musjeed impressed me more than anything of the sort which I have seen in India" —*Bishop Heber*.

रहे। उस समयके हिसाबसे इस इमारतके बनानेमें दस लाख रुपया खर्च हुआ था।

इस मसजिदकी सारी फर्शबन्दी सगमरमर की है। उस पर क्रमशः तीन फुट लम्बी और डेढ फुट चौडी क्यारिया कटी हुई है। कुल क्यारिया ९०० है। इनमें निमाज पढते समय बादशाह और अमीर-उमराव लोग बैठा करते थे। किबलेके निकट, यानी मध्यभागके अर्धगोलाकृति शिरोभागके नीचे, जो नक्काशी की गई है, वह सर्वोत्कृष्ट है। इसके सामने धर्माध्यक्षका मुख्य पीठ है, जो एक अखण्ड सगमरमरके पत्थरका बना है। यहॉ की एक दीवालपर शाहजहॉ और बहादुरशाहके हस्ताक्षर दिखलाये है।

इस मसजिदके एक दालानमें एक कोठरी है। वहॉंका जालीका काम अत्यन्त दर्शनीय है। इस कोठरीमें मुसलमान लोगोंकी दृष्टिसे अत्यन्त प्रिय, तथा मुहम्मद साहबके समयकी, पुरानी वस्तुऍ रखी है। उनमें सातवीं शताब्दीकी प्राचीन कुरानकी एक हस्तलिखित प्रति है। इसके सिवाय, इमाम हुसेन तथा इमाम हसनके द्वारा लिखी हुई कुरानकी भी दो प्रतियॉ है। यहा पर 'कष्प-ए-मुबारक' यानी हजरत मुहम्मदकी चर्मपादुकाऍ भी सुगधित द्रव्योंमें डालकर रखी गई है। 'कदम-उल्-मुबारक' यानी उनके पैरकी छाप, और 'मुइ-ए-मुबारक' यानी उनकी दाढीके बाल, भी वहॉ पर रखे हुए है। इसी तरह वहॉ पर उनकी कब्रके आच्छादनका थोडासा शेषभाग भी सुरक्षित रूपसे रखा गया है। जिन महाशयोंको ये चीजें देखनेकी लालसा हो, वे वहॉके काजीको कुछ दक्षिणा देकर उनको अवश्य देख सकते है। कहते है कि, शाहजहा बादशाहने इन वस्तुओंको लाकर यहॉ बडी भक्तिके साथ रखा है।

मुगल बादशाहोंके जमानेमें जुम्मा मसजिदकी बडी इज्जत थी। ईदके दिन यहॉं पर बादशाह और उसके अमीर-उमरा बडे ठाट बाटके साथ

आया करते थे। उस समय यहाँका दृश्य बहुत ही विचित्र देख पड़ता था। प्रति शुक्रवारको यहाँ पर ईश्वरकी प्रार्थना हुआ करती थी। मुसलमान लोग चूंकि धर्मके लिए पागल होते हैं, इस लिए इस मसजिदमें एकत्रित होने पर, यह मसजिद उनमें चाहे जैसी उत्तेजना उत्पन्न कर देनेका सामर्थ्य रखती थी। सन् ५७ के बलवेके समय, सितम्बर महीनेके एक शुक्रवारको यहाँ 'खुतबा' पढ़ा गया, और दिल्लीके सब मुसलमानोंने उस समय यह घोषणा कर दी कि, 'खल्क खुदाका, मुल्क बादशाहका, अमल बहादुरशाहका'। मतलब यह कि, उस भयंकर प्रसंग में यह मसजिद स्वधर्माभिमान तथा स्वदेशाभिमानकी प्रेरणा करनेवाली एक मुख्य जगह बन गई थी। परन्तु वह प्रेरणा क्षणभंगुर हुई, और राज-द्रोही बलवाइयोंका शीघ्र ही अन्त हो गया। बलवेके बाद यह चर्चा छिड़ी कि, यह मसजिद बिलकुल गिरा दी जावे। परन्तु सरकार-ने मुगल रियासतकी इस बड़ी इमारतको नष्ट करके संसारमें अपनी अपकीर्ति नहीं कराई। यह बहुत अच्छा हुआ। बिशप हीबर नामक यात्रीने जुम्मा मसजिदकी अलौकिक रचना देखकर बहुत ही आनन्द प्रकट किया है—उसने कहा है कि, "इस मसजिदका आकार, उसकी दृढ़ता और उसकी बनावटकी उत्तमताको देखकर मेरे मन पर जैसा प्रभाव हुआ, वैसा हिन्दुस्तानकी दूसरी इमारतोंके देखनेसे नहीं हुआ*।" रसेल नामके एक दूसरे यूरोपीय महाशयने लिखा है कि, "इस इमारतकी विशुद्ध शोभा, उसकी रचनाका परिमाण-सौन्दर्य, और भवनसम्बन्धी ऊंची कल्पनाशक्तिकी, यदि हमारे ईसाई प्रार्थना-मन्दिरके क्षुद्र और दरिद्री भवनसे तुलना की जाय, तो दुःखसे हमें अपना सिर नीचा

* "The size, the solidity, and rich materials of the Jumma Musjeed impressed me more than anything of the sort which I have seen in India."—*Bishop Heber.*

करना पडेगा।" * साराश यह कि, जिस इमारतके रचना-चातुर्य पर विदेशियोंको भी इतना आश्चर्य होता है, वह इमारत, सिर्फ दिल्ली शहरके लिए ही नहीं, किन्तु यदि समस्त भारतवर्षके लिए भी भूषण हो, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

दिल्ली शहर।

दिल्लीका किला, जुम्मा मसजिद और वर्तमान दिल्ली शहर—ये तीन हिस्से मिलकर नई दिल्ली अथवा शाहजहांनाबाद शहर बनता है। इस शहरके चारों ओर एक बडा शहरपनाह है, जिसका घेरा साढे पाच मील है, और उसके किलेका कोट डेढ मील है। किलेमें दो दरवाजे है। उनका नाम क्रमश 'लाहोर गेट' और 'देहली गेट' है। कुल शहरमें दस दरवाजे है। उनके नाम इस प्रकार है.—

१ 'कलकत्ता गेट'—यह राजमहलके पास है। यहाँसे रेल्वे स्टेशन की ओर रास्ता जाता है।

२ 'काश्मीर गेट'—यह उत्तरमें है। चर्च और कचहरियाँ इसके नजदीक हैं।

३ 'मोरीगेट'—यह भी उत्तरमें ही है।

४ 'काबुल गेट'—यह पश्चिममें है। इसके आगे सदर बाजार लगता है।

५ 'लाहोर गेट'—यह पश्चिममें है, और यहाँसे चाँदनी चौकको रास्ता जाता है।

६ 'फराशखाना गेट'—यह नैर्ऋत्यमें है।

* There is a chaste richness, and elegance of proportion, and a grandeur of design in all its parts, which are painfull contrast to the *mesquin* and paltry architecture of our christian churches " —*Russell*

७ 'अजमेर गेट'—यह भी नैर्ऋत्यमें ही है।

८ 'तुर्कमान गेट'—यह दक्षिणमें है।

९ 'देहली गेट'—यह भी दक्षिणमें ही है।

१० 'राजघाट गेट'—यह पूर्वमें है। यहाँसे जमनाजीके घाटकी ओर रास्ता जाता है।

किलेसे चलकर दिल्ली शहरमें प्रवेश करनेके लिए लाहोर दरवाजेसे आना पडता है। लाहोर दरवाजेके भीतर आतेही एक बडा चौडा रास्ता मिलता है। यह रास्ता सीधा चाँदनी चौक की ओर जाता है। दिल्ली शहरका नामी चौक यही है। यहाँ धनशाली व्यापारियों और जौहरियों की दूकानें है। यहाँका बादशाही जमानेका वैभव अब नष्ट हो गया है, और फिरसे उसके प्राप्त होनेकी बहुत कम सम्भावना है। इस चौककी दूकानें बाहरसे बडी भडकीली दिखती है। परन्तु इस रास्ते पर पहले जैसे मूल्यवान् वस्त्र परिधान किये हुए अमीर-उमराव, उनके कीमती सामान और सोने-चाँदीसे अलङ्कृत अच्छे अच्छे घोडे, उनके नाना प्रकारसे शृंगारित हाथी, तथा विविध रङ्गके मियानोंके झुंड दिखाई देते थे, उनका अब कहीं पता नहीं है—उनकी जगह पर अब यहाँ अर्वाचीन इक्के और घोडे गाडिया बहुत हैं। रास्तेसे गुजरते हुए चारों ओर नेचेदार हुक्कोंकी धूम खूब दिखाई देती है। हरएक दूकानमें हुक्का अवश्य होता है। पहले मुसलमानोंको ऐशो-आरामकी जो आदत थी उसका यहाँ मूर्तिमान स्वरूप दिखाई देता है। ये लोग सदैव व्यसनासक्त रहकर विलासितामें मग्न रहते थे। हा, अब अँगरेजी राज्यमें विद्याका प्रचार बहुत कुछ हो चुका है, अतएव इन लोगोंका ऐशोआराम भी अब बहुत कुछ कम हो रहा है, और ये लोग भी अब उन्नतिके मार्गपर अग्रसर हो रहे है। यहाँके सुशिक्षित लोग बडे सभ्य हैं, और बाहरवालोंको वे बडी आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। तथापि, मुसलमानोंकी रीतिके अनुसार,

औपचारिक वर्ताव और व्यर्थका आदरसत्कार यहाँ पर बहुत है। इसके सिवाय, यहाँ पर व्यर्थ की बडाई मारनेवालोंकी भी कमी नहीं है। दिल्लीके चाँदनी चौकमें खडे होनेपर 'दिल्ली इन्स्टीट्यूट' नामकी एक बडी इमारत दिखाई देती है। इस इमारत की बनावट यूरोपियन ढगकी है, और इससे दिल्लीको एक नये प्रकारकी शोभा प्राप्त हो गई है। यहाँ वाचनालय, अजायबघर, म्यूनिसिपालिटी, इत्यादि सार्वजनिक संस्थाएँ है। ग्रामसंस्थाने इस इमारतको १,३५,४५७ रु व्यय करके निर्म्माण किया है।

"दिल्ली इन्स्टीट्यूट" के सामने चाँदनी चौकके एक ओर १२८ फुट ऊँचा एक सुदर और दर्शनीय मीनार है। इस मीनारका-नाम 'क्लाक टावर' है, और दिल्लीकी म्युनीसिपालटीने २५,५०० रुपये खर्च करके उसको बनवाया है। इस मीनारसे चाँदनी-चौकको यद्यपि बहुत कुछ शोभा प्राप्त हुई है, तथापि मुगल बादशाहोंके प्राचीन मीनारोंकी बराबरी यह नही कर सकता। इस मीनारके शीर्षभागपर चारों ओर बडी बडी घडियाँ है। वे प्रत्येक पलमें, समर्थ रामदास स्वामीके शब्दोंमें, मानो दर्शकोंसे कह रही है कि, "भाइयो, घटिकाए निकल गई, पल निकल गये, और घंटा टन टन बजता है। इसी तरहसे तुम्हारे जीवनका भी नाश हो रहा है। इस लिए इस ससारमें आकर परमात्माका नाम लो, और कुछ परोपकारका कार्य कर जाओ।"

चाँदनी-चौकमें प्राचीन ऐतिहासिक स्थानोंमेंसे दो स्थान देखने लायक है! एक रोशनुद्दौला की मसजिद, और दूसरा कोतवाली। रोशनुद्दौला की मसजिद सन् १७२१ ईसवीमें, मुहम्मदशाह बादशाहके जमानेमें, रोशनुद्दोला जफरखानने बनवाई थी। यह मसजिद है तो छोटीही, परन्तु अत्यन्त कमनीय है। इसके गुम्बजपर सोनेके मुलम्मेका काम किया गया है, इसलिए इस मसजिदको सोनेकी मसजिद भी कहते है। नादिर-

शाहने जिस समय दिल्लीपर आक्रमण करके वहाँके लोगोंको कतल किया, उस समय उसने इसी मसजिदकी गच्चीपर खडे होकर वहाँकी कतलका अवलोकन किया था। दीन प्रजाजनोंका करुणा-पूर्ण क्रन्दन सुनकर उसके हृदयमें रत्तीभर भी दया उत्पन्न न हुई। प्रत्युत, उनके रुधिरप्रवाहके साथही साथ उस नराधम नरपिशाचके हृदयमें आनन्दकी तरङ्गें उमडने लगी थीं!! ऐसे पुरुषोंके लिए 'मानवसृष्टिके राक्षस' से अधिक और क्या उपमा दी जा सकती है? इस स्थानके पास ही कोतवाली की इमारत है। हडसन साहबने सन् १८५७ ईसवी के बलवेके समय, बादशाहके पुत्रोंको मारकर, उनकी लाशें लोगोंको दिखलानेके लिए यहीं पर लाकर रक्खी थीं!! बलवेके समय यद्यपि यह स्थान रक्तकी बूँदोंसे कलङ्कित हो गया था, तथापि आजकल वहाँ शान्ति-देवीका पूर्ण साम्राज्य है।

दिल्लीके चाँदनी-चौकका अवलोकन करनेवालोंके मनमें वहाँके 'विक्टोरियाबाग' को देखनेकी इच्छा उत्पन्न होती है। यह बाग अँग्रेजी ढँगपर लगाया गया है, और नगरनिवासियोंके विश्रामका वहा पूरा पूरा सुभीता किया गया है। इस उद्यानमें नेत्रोंका रंजन बहुत अच्छी तरह होता है। कर्णोंका रंजन होनेके लिए भी यहाँ पासही एक 'बैंडस्टैन्ड' की योजना की गई है। वहाँ हफ्तेमें नियत दिनोंपर सुन्दर वाद्य सुनाई देते हैं, जिन्हें सुनकर रंजनप्रिय जनसमुदायको बडा संतोष होता है। इस बागसे अलीमर्दानकी नहर बह रही है। इस जलाशयसे बागको विशेष शोभा प्राप्त हुई है। सुन्दर सरिता अथवा रमणीय सरोवर उद्यानश्रीके प्यारे क्रीडा-भवन हैं। इनके बिना उसके विलास पूरे नहीं होते! अस्तु।

इस बागमें पत्थरका एक हाथी है। उसके पैरोंके पास यह लेख खुदा है कि, शाहजहाँ बादशाह सन् १६४५ ईसवीमें ग्वालियरसे यह

चौथा प्रकरण ।



इन्द्रप्रस्थ ।



महाभारतकी कौरव-पाडवोंकी कथाओंने जिस इन्द्रप्रस्थका नाम अजर-अमर कर दिया है, और जिसका नाम हिन्दुओंने अनेक बार सुना है, वह सुप्रसिद्ध नगर दिल्लीके दक्षिणमें दो मीलकी दूरी पर है । यहाँ पाडवोंके समयकी धन सम्पन्न नगरी अब नहीं है। सिर्फ मुसलमानी किलेका कुछ जीर्ण भाग और उसमें कुछ प्राचीन मसजिदें हैं । आजकल यहा पर न तो वे उत्तुग देवालय है, और न वे रमणीय उद्यान । यहाकी निर्जन तथा उध्वस्त दशाको प्राप्त,—परतु इतिहासकी दृष्टिसे अत्यत पवित्र एव महत्वपूर्ण—भूमिका अवलोकन करने पर प्रत्येक हिंदू दर्शकका हृदय गद्गद हो जाता है । यह सोच कर, कि हम पाडवोंके इन्द्रप्रस्थमे खडे है, उसे बडा गौरव मालूम होता है, और उस सुदर नगरीकी विपदावस्थाको देखकर उसे अत्यत खेद होता है। पाटवोंकी पुण्यभूमि अवलोकन करनेकी उत्सुकतासे हृदयमें उठी हुई आनद-तरगें क्षणभरमें विलीन हो जाती है, और वहा जाते ही शोकका साम्राज्य हृदयमें छा जाता है । अस्तु । मनकी यह हालत हो जाती है, तथापि दर्शकोंको इस स्थानके देखनेकी जिज्ञासा विशेष रहती है, और दिल्ली जाने पर उसका अवलोकन किये बिना वे कदापि नहीं रहते।

इन्द्रप्रस्थ नगरका विस्तारपूर्वक वर्णन महाभारतमें दिया ही है । तो भी उसका थोडासा वृत्तात यहा पर दे देना आवश्यक जान पडता है । इस नगरकी कथा इस प्रकार है —

द्रौपदीका स्वयवर होनेके बाद, उसके साथ पाडव हस्तिनापुरको रवाना हुए । तब कौरव राज धृतराष्ट्रके मनमें यह डर पैदा हुआ कि

ज्योंही ये हस्तिनापुरमे आवेंगे त्योंही राज्यके बँटवारेके लिए मेरे पुत्रोंमें और इनमें झगडा शुरू हो जायगा। इसका प्रतिबन्ध करनेके लिए उन्होंने विदुरके द्वारा धर्मराज युधिष्ठिरको यह सदेशा भेजा कि, तुम लोग हस्तिनापुरको न आकर वहाँसे थोडी ही दूर पर जो खाडव-वन अथवा इन्द्रवन नामक भारी जगल है, उसको साफ करके वहाँ पर एक नया शहर बसाओ, और वहीं पर तुम अपने भाइयोंके साथ राज्य करो। धर्मराज धर्मराज ही थे। उन्होंने इस बातको एकदम स्वीकार कर लिया, और इन्द्रवनको जला कर, तथा साफ करके, वहाँ पर एक बडा भारी नगर बसाया। इसीको इन्द्रप्रस्थ अथवा खाडवप्रस्थ नाम दिया गया। महाभारतमें आदिपर्वके २०७ वें अध्यायमें इस नगरका बहुत ही सुदर वर्णन किया गया है। उससे जान पडता है कि, यह नगरी पृथ्वी पर मानो एक इन्द्रनगरीके ही समान थी। उसमें बडे बडे मनोहर उद्यान, जलाशय, इत्यादि बने थे। भवनोंकी शोभा अत्यन्त निराली थी। हाट, बाट, बाजार, चौक, इत्यादि अपनी सम्पत्ति और वैभवमें कुबेरपुरीको भी मात करते थे।

साराश यह है कि, यह नगरी ऐसी सुदर और विलक्षण थी कि, कौरवोंसे पाडवों द्वारा मागे गये ग्रामोंमें उसको अग्रस्थान प्राप्त हुआ था। पाडवोंने कौरवोंको यह समाचार भेजा था —

इन्द्रप्रस्थ वृकप्रस्थ जयन्त वारणावतम्।
देहि मे चतुरो ग्रामान् पचम किंचिदेव तु॥

अर्थात् इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयन्त, वारणावत—ये चार गाव तो हमें अवश्य दो, फिर पाँचवाँ चाहे जौनसा दे दो। आखिर कौरवोंने पाडवोंको ये गांव न दिये। यही नहीं, किन्तु यहा तक कह दिया कि, हम तो तुम्हें उतनी मिट्टी भी न देंगे जितनी सुईकी नोक पर भी आ सके। उसका परिणाम भारतीय युद्ध है।

इसी शहरमें पाडवोंने राजसूय यज्ञ सम्पन्न किया, और मयासुरकी बनाई हुई विचित्र सभा इसी शहरमें थी। इस नगरीका नाम महाभारतमें अनेकों बार आया है। इसके अतिरिक्त अन्य चार प्रस्थ भी सिर्फ नाम मात्रके लिए मौजूद है। उनके स्थान दर्शकोंको दिखलाये जाते है। इन प्रस्थों अथवा पतोंके नाम इस प्रकार है.—पानीपत, सोनपत, तिलपत और बाघपत। ये सब दिल्लीके मैदानमें जमनाके पश्चिमी किनारे पर बसे हुए थे।

इन्द्रप्रस्थमें पाडवोंके समयकी नगरीका अब कुछ भी अश शेष नहीं रहा है। तथापि इस स्थानकी पवित्रता अभी तक कायम है, और श्रद्धालु हिन्दू जनोंकी दृष्टिसे जो अत्यन्त पूज्य क्षेत्र है उनमें वह अभी तक गिना जाता है। पद्मपुराणमें इन्द्रप्रस्थकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा है —

यमुना सर्वसुलभा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा ।
इन्द्रप्रस्थे प्रयागे च सागरस्य च सगमे ॥ १ ॥

अर्थात् "यमुना सर्वत्र सुलभ है, परन्तु इन्द्रप्रस्थ, प्रयाग और समुद्र-सगम, इन तीन स्थलोंमें दुर्लभ है।" वहाँ पर यमुनाके किनारे 'निगमोद्बोध' नामक तीर्थ तो बहुत प्रसिद्ध है, और वहाँ यात्रीगण जाया करते है। इस तीर्थके अतिरिक्त यहाँ पर छोटे छोटे तीर्थ और देवता अनेक है।

दिल्ली शहरसे जब हम इन्द्रप्रस्थ देखनेके लिए जाते है, तब पहले हमें 'लाल दरवाजा' नामक एक बहुत बडा प्राचीन दरवाजा मिलता है। यह शेरशाहकी राजधानीका एक प्रसिद्ध दरवाजा था। इस दरवाजेके सामनेकी ओर हुमायूँ बादशाहका बनवाया हुआ 'पुराना किला' देख पडता है। यही प्राचीन इन्द्रप्रस्थ है। इस किलेको हुमायूँ बादशाहने "दीने पनाह" नाम दिया था। हुमायू जब इस किलेसे भाग

गया, तब उसके प्रतिपक्षी शेरशाहने इस किलेका नाम शेरगढ़ अथवा शाहगढ़ रखा था। प्रथमतः सन् १५३३ ईसवीमें हुमायूने इस किलेको बनवाना शुरू किया, और फिर इसके सात वर्ष बाद शेरशाहने उसके आसपास उत्तम कोट बनवाकर उसको सुशोभित कर दिया। इस कोटका घेरा लगभग एक मीलका है। इस किलेके मध्यभागमें, यानी इन्द्रप्रस्थकी भूमिपर, अब राजमन्दिरोंके सुवर्ण-कलश नहीं चमकते, बल्कि उस पुण्यभूमि पर आज अकिंचन जनोंकी पर्णकुटिकाएँ मात्र दृग्गोचर होती है!

इस किलेमें 'किलाकोना मसजिद' और 'शेरमन्दिल' नामकी दो प्राचीन दर्शनीय इमारतें है। इनमें पहली इमारत लाल रंग और संगमरमरके पत्थरकी बनी हुई है, और उसकी रचना बड़े कौशलकी है। यह पठान बादशाहके शासनकालमें, सन् १५४० ईसवीमें तैयार हुई। शिल्प-कला-विशारदोंकी दृष्टिसे इसकी रचना बहुतही श्रेष्ठ है, और हिन्दुस्तानकी शिल्पकलाके इतिहासके रचयिता मिस्टर फर्ग्युसनने इसकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है कि, इटलीके निवासी, जिस तरह वेनिसके 'कँपनॉइल' नामक अत्युच्च राजमहलको अपनी राजसत्ता तथा विजयवैभवका दर्शक समझते थे, उसी प्रकार पठान लोग इस मसजिदके अत्युच्च मीनारको, प्रार्थनामन्दिरका सिर्फ एक भाग ही न मानकर, अपने अभ्युदय और राजसत्ताका कीर्तिस्तंभ मानते थे। उनका धर्मोपदेशक इस मीनार परसे सब लोगोंको, प्रार्थनामें सम्मिलित होनेके लिए, बड़े ताल-सुरसे, पुकारा करता था। उस समय बादशाहको भी अपना काम-काज छोड़कर महलोंसे शीघ्र ही वहाँ जाना पड़ता था। हुमायूँ बादशाह इस मसजिदके निकट शेरमन्दिल नामक राज-प्रासादमें रहा करता था। एक दिन नियमानुसार काजी-जीने इस मीनार पर चढ़कर बादशाहको प्रार्थनाके लिए बुलाया। बाद-

शाह उसी समय जल्दी जल्दीमें उठकर दौडा, जिससे जीनेकी एक सीढीसे उसका पैर फिसल पडा, उसे भयङ्कर चोट आई, और उसीमें सन् १५५६ ईसवीके जनवरी महीनेकी २६ वीं तारीखको उसका अन्त होगया !

इन्द्रप्रस्थमें दिखाई देनेवाले उपर्युक्त मुसलमानी ऐतिहासिक स्थानोंको अवलोकन करनेसे दर्शकोंको एक प्रकारका उद्वेगजनक दृश्य दिखाई देता है। जहाँ खडे होकर अर्जुनने अपने गाण्डीव धनुपसे इन्द्रप्रस्थ नगरीके कोटकी रक्षा की, वहाँ अब 'किलाकोना मसजिद' खडी हुई है ! जिस महलमें भगवान् श्रीकृष्ण और पाडवोंकी कल्याणकारी मन्त्रणाएं हुआ करती थीं, उस महलके ठौर पर अब शेरमन्दिल अथवा शेरशाहका महल खडा है ! इस महलके सामने आजकल जो गिरी हुई जगह दिखाई दे रही है, उसी जगह राजसूय यज्ञका महोत्सव हुआ था, जिसका वृत्तान्त वहाँके लोग अब तक बतलाया करते है ! निस्सन्देह, विचारशील पुरुपके लिए इन्द्रप्रस्थका यह घोर परिवर्तन अत्यन्त विलक्षण है ! अहा ! कालचक्रकी महिमा कितनी अगाध है, सो हमें इन्द्रप्रस्थ नगरीके इस विपर्याससे अच्छी तरह मालूम होती है । जहाँ अनेक प्रकारकी राजनैतिक मन्त्रणाएं हुई, जहाँ अनेकों राज्य-क्रान्तियाँ हुई, जहाँ लक्ष्मी मूर्तिमान् वास करती थी, जहाँके विषयमें कहा गया है कि —

रम्याश्च विविधास्तत्र पुष्करिण्यावनावृता ।
तडागानि च रम्याणि बृहन्ति सुबहूनि च ॥ १ ॥

जहाँ रत्नोंका तेज चमकता था, और शस्त्रोंकी दिव्य ज्योति चमचमाती थी, वहाँ अब दो यवन-मन्दिर अपने गतवैभव पर शोक करते हुए खडे है ! दिल्लीका 'पुराना किला,' अपने नामके अनुसार, पुराना होकर शनै शनै. विनाशको प्राप्त हो रहा है, और वहाँका सारा भूप्रदेश

र्जन होकर भयानक वन रहा है! अहा उसकी यह दशा देखकर सका हृदय दु खसे न भर जायगा ? अहा ! किसी सहृदय आग्ल वि ने क्या ही अच्छा कहा है —

" The Niobe of nations ! There she stands,
Childless and crownless, in her voiceless woe,
An empty urn within her wither'd hands,
Whose holy dust was scatter'd long ago,
The *Pandawa's* tomb contains no ashes now,
The very sepulchres lie tenentless,
Of their heroic dwellers dost thou flow,
Old *Jumna* ! through a marble wilderness ?
Rise, with thy azure waves, and mantle her distress "

अर्थात् हे दुखी राष्ट्र ! आज तू पुत्रहीन और राज्य-श्री-हीन वर्तमान । आज तेरे अधिकार में कोई भी वस्तु नहीं है। तेरी पवित्र सम्पत्ति शताब्दियों पूर्व नष्ट हो चुकी। पाडवोंकी समाधिकी राख भी बाकी नहीं । उनका अपना भवन निर्जन पडा है। वहॉके शूरवीर निवासियोंका ता भी नहीं है। हे बूढी जमना ! क्या आज तू जनशून्य सगमरमर की हाडियोंमें बहती है ? उठ, खडी हो, और इसके दुखोंको दूर कर !

पांचवां प्रकरण ।



दिल्लीके आसपासके स्थान ।



हुमायूँका मकबरा ।

इन्द्रप्रस्थ नगरी अथवा पुराने किलेका अवलोकन करनेके बाद यात्री गण बहुधा हुमायूँ बादशाहकी कबर देखनेके लिए आते है । उस स्थलसे यह एक मीलके अन्तर पर है । वहाँसे इधर आते हुए बीच में 'लाल बगला' नामकी एक इमारत मिलती है । यहाँ पर हुमायूँ और शाहआलम बादशाहकी रानियोंकी कबरें है । यहाँसे 'अरबकी सराय' नामकी एक छोटीसी बस्ती है । इसके दो दरवाजे दर्शनीय है । इस गावको हुमायूँ बादशाहकी पत्नीने बसाया था । यहाँ पर अरब लोग रहा करते थे । इसी लिए इस स्थानका 'अरबकी सराय' नाम पडा है । यहाँसे हुमायूँ बादशाहकी कबर बिलकुल समीप है ।

इस मकबरेमें प्रवेश करते समय दूसरे दरवाजेके पास एक लेख देख पडता है । उससे यह मालूम होता है कि, इस इमारतको हमीदा बानू बेगम, उर्फ हाजी बेगम, नामक हुमायूँ बादशाहकी रानीने, अपने पतिके स्मारकमें बनवाया । इस इमारतका काम सोलह वर्ष तक जारी रहा, और इसके बनवानेमें पन्द्रह लाख रुपया खर्च हुआ । स्वय हमीदा बानू बेगम और राजघरानेके अन्य कई एक पुरुषोंकी कबरें भी यहीं पर है । यह इमारत मुगल बादशाहतकी बिलकुल प्रारम्भिक शिल्प-कलाका नमूना है । यह इमारत चौकोन है, और इसके चारों ओर अठपहलू कोने है । इसका मध्यभाग अठपहलू है, और उस पर एक अर्धगोलाकृति शिखर, अथवा गुम्बज है । उसके चारों ओर चार अठपहलू मीनार है । इस

इमारतका ढाचा अत्यन्त उत्तम है, और इसीके नमूने पर आगरेका ताजमहल बना है। इस इमारतमें और ताजमहलमें इतना अन्तर है, जितना एक ग्रामीण स्त्री और एक राजकुलकी रूप-ऐश्वर्य्य-सपन्न भुवनसुन्दरीमें होता है। ताजमहलमें जो कल्पनाशक्ति; कवित्व और प्रतिभा है, वह इसमें बिलकुल ही नहीं है। तो भी यह कबर बहुत अच्छी है, और अपनी सादगीसे ही दर्शकोंके चित्तको आकर्पित करती है।

हुमायूँ बादशाहकी कबरकी सादगीमें भी एक प्रकारका कौतुक है। अर्थात् वह सादगी अत्यन्त मनोरम और दर्शनीय है। सिकन्दरामे अकबरकी कबर और शहादरामें जहाँगीरकी कबर भी सादगीमें प्रसिद्ध है। परन्तु उनकी सादगीकी अपेक्षा इस इमारतकी सादगी अधिक मनोहारी है। इस इमारतमें ठौर ठौर पर सगमरमरका जो काम किया गया है, उससे इमारतकी शोभा और भी बढ गई है। पठान बादशाहोंने जो इमारतें बनवाई, उनमेंसे कुतुब मीनारको छोडकर, बाकी सब इमारतें, इस मुगल शिल्पकलाके पहले कामके आगे, रद्द हो जाती है। कनिंगहम साहबका कथन है कि, इस इमारतके शिल्प-कार्यमें प्राचीन शिल्प कार्यकी अपेक्षा कुछ अधिक नवीन सुधार हुए है। वे सुधार ये है कि मुख्य इमारतके चारों कोनों पर चार सुन्दर मीनारोंकी इसमें कल्पना की गई है, और इमारतके गुम्बजोंकी बेठक चौडी नहीं की गई है। यह इमारत बहुत साफ और बडी है, अतएव दूरसे बहुत सुन्दर दिखाई देती है, परन्तु ताजमहल जेसा साफ और हवादार है, वैसी यह नहीं है।

ऊपर कहा जा चुका है कि, हुमायूँ बादशाहकी प्रिय पत्नी, महाप्रतापी अकबर बादशाहकी माता, हमीदा बानू बेगमने इस कबरको बनवाया, सो उसकी कबर भी इसी इमारतमें है। इस बेगमका अपने पति पर बडा प्रेम था, और इस लिए दर्शकोंकी दृष्टिमें वह यहा अपने पतिके सन्निध बराबर निवास करती है।

इसी इमारत में दारा, फर्रुखशियर, रफीउद्दौला, दूसरे आलमगीर, इत्यादि बादशाहोंकी कबरें है। इन सबमें सिर्फ हुमायूँ बादशाहकी कबर ही विशेष हृदयाकर्षक दिखाई देती है। शेष कबरें उन बादशाहोंकी योग्यताको देखते हुए बिलकुल ही साधारण है। सच है, जिन्होंने कुछ भी सुकर्म्म नहीं किये, जिनके शासनसे प्रजाका कल्याण नहीं हुआ, अथवा जिन्होंने दूसरोंके साथ थोड़ा भी उपकार नहीं किया, उनका स्मारक यदि धुँधला हो, तो इसमें कोई आश्चर्य्य नहीं है।

शेख निजामुद्दीन औलियाकी दरगाह।

दिल्लीमें शेख निजामुद्दीन औलियाकी दरगाह बहुत प्रसिद्ध है। शेख निजामुद्दीन औलिया मुहम्मद तुगलकके जमानेमें, सन् १३२१ ईसवीके लगभग, एक नामी साधु पुरुष हो गया है। यह महापुरुष अपने महान् साधुत्वके लिए प्रसिद्ध है। यह फरीदुद्दीन गुजशक्कर नामक एक सुप्रसिद्ध औलियाका चेला था। गुजशक्कर औलिया बड़ा अलौकिक पुरुष था। कहते है कि, यह साधु मन्त्रके जोर पर मिट्टीके ढेलेकी शक्कर बना देता था। इस की गुरु परम्परा अजमेरके मुईनुद्दीन चिश्ती नामक प्रसिद्ध साधु तक पहुँचती है। मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरमें मुसलमानोंका अत्यन्त वद्य और परमपूज्य साधु था। यह परम्परासे निजमुद्दीनका चेला था। इस लिए लोगोंकी इसमें बड़ी श्रद्धा थी। यह महापुरुष बड़ा दानशूर था, और उसका खर्च किसी राजासे भी अधिक रहा करता था। चाहे इस कारणसे हो कि, लोगों पर इसका बड़ा प्रभाव था, और चाहे अन्य किन्हीं कारणोंसे हो, तुगलक बदशाह इससे बहुत द्वेष करता था। इसलिए दिल्ली जाकर इस औलियाके महत्त्वको सदाके लिए नष्ट कर देनेका उसने मनसूबा बाँधा। औलियाके शिष्योंको जब यह मालूम हुआ कि, बादशाह अपनी बड़ी भारी सेनाके साथ हमारे गुरुजी पर आक्रमण करनेके लिए आ रहा है, तब

वे गुरुजीके पास गये, और हाथ जोडकर बोले, "महाराज, बादशाह आपसे नाराज है, और वह आप पर चढाई करनेके लिए आ रहा है, अतएव आप शीघ्र ही दिल्लीको छोड दीजिए।" इस पर इस ओलियाने अत्यन्त शान्तिके साथ उत्तर दिया कि, "दिल्ली दूर अस्त"— यानी दिल्ली अभी बहुत दूर है। जब बादशाह दिल्ली आ जायगा, तब देखा जायगा। चमत्कार यह हुआ कि, बादशाह दिल्ली आ ही न पाया। उसके दिल्ली आनेके पहले ही उसके पुत्रने उसका वध कर डाला!! भाविक और श्रद्धालु जनोंकी समझ है कि, बादशाह इस साधु पुरुषके प्राण हरण करनेकी दुष्ट बुद्धिसे आ रहा था, इसी लिए उसको यह प्रायश्चित्त मिला। स्लीमन साहबकी राय है कि, यह साधु ठगोंका नेता था, और उसीकी सम्मतिसे बादशाहका खून हुआ। जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि, अब तक इस साधुके विषयमें लोगोंकी असीम श्रद्धा है, और उनकी दृष्टिसे वह बडा पूज्य है। इस साधुके कहे हुए 'दिल्ली दूर अस्त' ये शब्द आजकल इस कहावतके रूपमें बदल गये है कि, "दिल्ली दूर है।" अँगरेजीमें भी इसी अर्थकी एक कहावत है। वह यह है:—

'There is many a slip between the cup and the lip'

अस्तु। यह साधु सन् १३२४ ईसवीमें, लगभग ब्यानवे वर्षका होकर, परलोक सिधारा। इस साधुकी कबर पर यह दरगाह बनी हुई है, इसी लिए इसको निजामुद्दीन ओलियाकी दरगाह कहते हैं। यह दरगाह भी दिल्लीमें एक दर्शनीय स्थान है।

निजामुद्दीन ओलियाकी दरगाहके पास एक छोटासा गाव बसा हुआ है, जहा प्रति वर्ष एक बडा भारी मेला हुआ करता है। दरगाहके प्रवेश-द्वार पर सन् १३७८ का सन् खुदा हुआ है। इसको फीरोज-शाह तुगलकने बनवाया। इसके पास एक छोटासा तालाब है, जो

बहुत पुराना है। लोगोंका कहना है कि इस औलियाके शापसे उसका पानी खारा हो गया है।

मुख्य दरवाजेसे अन्दर जानेपर कुछ छोटी छोटी कबरें और मसजिदें मिलती है। वहीं पर शाहजहाँ बादशाहकी पटरानी कोकिला-देवी (बाई) की कबर है। यह कबर बडी सुन्दर है। यहाँ पर पास ही एक बावडी है। उसका नाम 'चश्मे-दिलखुश' है।

इस बावडी पर हिजरी सन् ७१३, यानी ईसवी सन् १३१२ खुदा है। यहाँ पानीमें एक मेहराब है। कहते है कि, उसके द्वारा भुँहारेके अन्दर पानी ले गये हैं। अस्तु। वहाँसे फिर दो दरवाजे मिलते है। उनसे जानेके बाद भीतर मुख्य दरवाजा मिलता है। यह इमारत दूरसे बहुतही सुन्दर दिखाई देती है। इसकी कमानियाँ, उनकी नक्काशी और मुख्य गुम्बज, सभी बहुत उत्तम है। यह इमारत बिलकुल मुसलमानोंके ताजियोंके समान है। इसके बीचोंबीच निजामुद्दीन औलियाकी मुख्य कबर है। यह कबर बहुत पुरानी है, और उसकी इमारत कुछ अक्बरके जमानेमें और कुछ शाहजहाँके जमानेमें बनाई गई। यहाँकी मुख्य कबर पर जरीके कीमती वस्त्र और पुष्पमालाए चढाते है, और बहुतसे मुसलमान भक्तिपूर्वक वहाँ पर दान-धर्म करते हैं। यहाँपर और-ङ्गजेब बादशाहने मजलिसखाना नामका एक महल बनाया है। इस इमारत पर कोई विशेष लेख खुदा हुआ नजर नहीं आता। परन्तु दो स्थानों पर "*क्बिलेगाह-ए-खास-ओ-आम*" (सब लोगोंके लिए प्रार्थनाका स्थान) और "*कबर-ए-शेख*" (साधुकी कबर) लिखा है। यहाँका वार्षिक उत्सव देखने लायक होता है।

निजामुद्दीन औलियाकी दरगाहके पास ही जमातखाना मसजिद नामकी एक दूसरी इमारत है। यह भी बडी सुन्दर और दर्शनीय है। कहते है कि, इसको खिजरखाने बनवाया था। यहाँकी कारीगरी भी

बहुत उत्तम है। इस इमारतके दरवाजे पर हिन्दू देवताओंकी भी मूर्तियाँ है। इमारतके मध्यभागमें एक सोनेका प्याला टँगा हुआ है। कहते हैं कि, यह बहुत पुराना है।

जहानारा बेगमकी कबर।

शेख निजामुद्दीन औलियाकी दरगाहके दक्षिणमें कई बडे बडे लोगा तथा राजकुलके नरनारियोंकी कबरें है। इन कब्रोंमें शाहजहाँ बादशाहकी प्यारी बेटी जहानारा बेगम की कबर है। यह बडी पितृ-भक्त थी, और शाहजहाँके कैदमें रहते समय बराबर अन्त तक उसकी सेवामें रही। इसकी कबर बिलकुल सादी है, और उसपर कोई आच्छादन नहीं है, प्रत्युत, उसके मध्य-भागमें दूब लगानेके लिए जगह छोड़ दी गई है। इस कबरका मुख्य पत्थर छे फुट लम्बा है, और उसके ऊपर अरबी भाषामें "परमेश्वर ही जीवन और परमेश्वर ही पुनर्जन्म" लिखा है। उसके नीचे कुरानका साङ्केतिक अक्षर 'मिम्' लिखा है। उसके नीचे फ़ारसी भाषामें निम्नलिखित अर्थका मजमून है —

" Save the green herb, place naught above my head,
Such pall alone befits the lowly dead,
The fleeting poor Jehanarah lies here
Her sire was Shah Jahan and Chist her Pir,
My God the Ghazi monarch's proof make clear "

अर्थात् "सिवा हरी दूबके मेरे ऊपर—अर्थात् मेरी समाधि पर और कुछ न रखना। खाकसारके लिए यही काफी है। नश्वर और गरीब जहानारा यहाँ निवास करती है। उसके पितृ शाहजहाँ और गुरु चिश्ती थे। परमात्मा राजाके प्रमाणको और भी सिद्ध करे।" इस राजकन्याकी यह लीनता और रसिकता देखकर दर्शकोंको 'विनयो हि सतिव्रतम्' वाली उक्तिका स्मरण हो आता है, और वे क्षणभरके लिए कौतूहल-

सागरमें निमग्न होजाते है । इस कवरपर दिये गये सनसे जान पडता है कि, यह सन् १६८१ ईसवीमें वनाई गई ।

जहानाराकी कवरके वाईं ओर शाहआलम बादशाहके लडके मिर्जा अलीगोर, और दाहनी ओर अकबरशाहकी दूसरी बेटी जमीलुन्निसा की कबर है । इन कबरोंके पास, पूर्व ओर मुहम्मदशाह बादशाहकी कवर है । यह अभागी बादशाह सन् १७४८ ईसवीमें मृत्युको प्राप्त हुआ । मयूरसिंहासन पर बैठनेवाला अन्तिम बादशाह यही था । इसकी कवरके पास उसकी बेटीकी कवर है, जो नादिरशाहके बेटेको ब्याही थी । इस कबरका प्रवेशद्वार संगमरमर का बना है, और उसपर बेल बूटोंका काम बहुत बढिया किया गया है । इसके नजदीक एक तीसरी कवर है, जो दूसरे अकबरशाहके लडके शाहजादा जहाँगीर की है। यह लडका पागल था । इसने दिल्लीके रेजीडेन्ट मिस्टर सेटन पर गोली चलाई थी, जिससे इसको इलाहाबादमें लाकर कैद किया था ।

खुसरो कविकी कबर ।

इन स्थानोंको देखनेके बाद, मुख्य आँगनमे आने पर, 'चबूतरा-यारानी' और खुसरो कविकी कब्र, ये दो रमणीय स्थल दृष्टि पडते है । इनके सिवा, वहाँ पर और भी अनेक साधु-सन्तोकी कबरे है । "चबूतरा-यारानी" पर निजामुद्दीन औलिया और उसके मित्र लोग बैठा करते थे । इसी लिए उसको 'मित्रोंका चबूतरा' नाम प्राप्त हो गया है। अमीर खुसरो हिन्दुस्तानका एक विख्यात कवि था। उसकी मधुर कविता-के कारण उसे "मधुरभाषी तोता" नाम प्राप्त हुआ था । उसकी कवर पर 'अदीम्-उल-मिसल' यानी 'अद्वितीय पुरुष' ये शब्द भी लिखे है । इस नामसे फारसी भाषामें हिजरी सन् ७२५ सिद्ध होता है। यह उसकी मृत्युका सन् (१३२४ ईसवी) है । अमीर खुसरो निजा-मुद्दीनका प्रिय मित्र था। इसने मुहम्मद तुगलक्के राजमहलमे चारों ओर

भ्रमण करके अनेकों प्रासादिक पद्य तैयार किये है । कवितादेवी उस पर पूर्ण प्रसन्न थी । तुगलक बादशाहके राजमहलमें गुजरातके राजाकी देवलदेवी नामकी एक लावण्यवती कन्या थी । कहते है कि, यही इस कविकी कवित्व-स्फूर्तिका मुख्य कारण है ।

कहते है कि, इस सौन्दर्य्य-लतिका पर उसने बहुत सुन्दर कविताएँ बनाई हैं । इसकी कविताएँ बहुत प्रेमपूर्ण और मधुर है, और अब तक लोगोंके मुँहसे सुनी जाती है । हिन्दुस्तानमें अनेकों कवि हो गये हैं, और उनके काव्योंने उनकी कीर्तिको अमर कर दिया है, परन्तु उनकी कबरें या समाधियाँ बहुत ही कम दिखाई देती है । गीतगोविन्दके रचयिता कवि जयदेवकी समाधि पूर्व-प्रान्तमें सुनी जाती है, और कवि खुसरोकी कबर दिल्लीमे प्रत्यक्ष देखी जाती है । इनके सिवाय हिंदुस्तान के कवियोंके स्मारक-मन्दिर और कहीं भी नहीं पाये जाते । एक सस्कृत कविका सुभाषित है —

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धा कवीश्वरा ।
नास्ति येषा यश कार्ये जरामरणज भयम् ॥

अर्थात् उन रससिद्ध सुकृती कवीश्वरोंकी जय हो, कि जिनके यश-रूपी शरीरके लिए जरा और मरणका कभी भय नहीं है ।

परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि, हमारे कवियोंके लिए किसी प्रकारके स्मारककी आवश्यकता नहीं है । सस्कृत कवि कालिदास, भवभूति, दडी, बाण अथवा हिन्दी कवि तुलसीदास, सूरदास, केशवदास, बिहारी, इत्यादिके नाम पर यदि आज कोई स्मारक होते, तो उनसे दर्शकोंको निस्सन्देह बहुत आनन्द हुआ होता ! आज भी दिल्लीमें अमीर खुसरोकी मनोरम कबर देखनेसे जान पडता है कि, जैसे उसकी सुन्दरता दर्शकोंको, इस कविके काव्य-माधुर्यका स्मरण दिलानेके लिए, बुला रही है, और स्वय कबरके भीतरी मडपमें जाने पर ऐसा भास

होता है कि, मानो उससे निकलनेवाली मजुल प्रतिध्वनि किसी संस्कृत कविकी वाणीमें यह कह रही है कि.—

वाणी ममैव सरसा यदि रञ्जयित्री
न प्रार्थये रसविदामवधानदानम्।
सायतनीषु मकरन्दवतीषु भृगा
किं मल्लिकासु परमव्रणमारभन्ते ॥ १ ॥

अर्थात् मेरी कवितामें यदि रस है, और पढनेवालेको यदि उससे आनन्द होता है, तो मै रसिक लोगोंसे उसकी तरफ ध्यान देनेकी, प्रार्थना नहीं करता। सायकालको भौरा पुष्परससे भरी हुई मल्लिकाकी तरफ आनेके लिए क्या किसीकी सलाह लेता है?

अस्तु। कवि खुसरोकी कबरका दर्शन करके बाहर आनेके बाद थोडी ही दूर पर दौरानखा और आजमखा नामक दो प्रसिद्ध पुरुषोंकी कबरें है। इनके बाद वहाँ दो फुटके अन्तर पर 'चौसठ खम्भा' नामक एक दरगाह मिलती है। इस इमारतमें चौंसठ खम्भे हैं। इसी लिए इसको 'चौसठ खभा' नाम प्राप्त हुआ है। इसकी बनावट और रचना शाहजहाँके समयकी इमारतोंके समान सुन्दर और मनोहारी है। इसे देखनेसे जान पडता है कि, मानो यह इमारत 'दीवान-ए खास' नामक सौन्दर्य्य-मन्दिरका पहलेका नमूना ही है। इस इमारतमें सब जगह बढिया सगमरमरका काम किया हुआ है। इसका आकार चौरस है। इस इमारतमें अकबर बादशाहके सेनापतिके लडके- अजीमखाकी कबर है। यह अजीमखा गुजरातका गवर्नर था। यह प्राचीन धर्म्मका कट्टर अभिमानी था, अतएव इसको अकबर बादशाहका नवीन धार्मिक सुधार पसन्द नहीं था। परन्तु अकबरने कभी उससे किसी प्रकारका आग्रह नहीं किया, और उसको उसके ही मतानुसार चलने दिया। यह मनुष्य बड़ा धर्मात्मा था, और गरीब-गुरबोंको सर्वदा अन्नदान किया करता, तथा मुहरें बाँटा करता था। इस लिए उसके विषयमें दिल्लीके गरीब

लोगोंमें इस अर्थकी एक कहावत प्रचलित हो रही है कि, "परोपकारी अजीमखाँ गरीबोंको सिर्फ भोजन ही नहीं देता, किन्तु साथही दक्षिणा भी देता है।" निस्सन्देह, जो सज्जन अपने धनका उपयोग परोपकारमें करते हैं, उनकी कीर्ति अजरामर हो जाती है।

सफदर-जंगका मकबरा।

हुमायूँ बादशाहकी कबरसे अन्त तक जो रास्ता जाता है, उसके सिरे पर नवाब मनसूरखा उर्फ सफदरजंगकी कबर है। नवाब सफदरजङ्ग दिल्लीकी राजनीतिका एक प्रसिद्ध सूत्रधार था, और अयोध्याके पहले नवाब सआदतखाके बाद उसकी गद्दीका स्वामी हुआ। यह दिल्लीके बादशाह अहमदशाहका प्रधान मंत्री था, अतएव दिल्लीके राजनैतिक मामलोंमें इसका मुख्य हाथ रहता था। सन् १७५३ इसवीमें दिल्लीमें इसकी मृत्यु हुई। उसकी यह कबर उसके पुत्र, अयोध्याके तीसरे नवाब सुजाउद्दौलाने, तीन लाख रुपये खर्च करके, बनवाई है। इस इमारतमें सफदरजंगके साथ उसकी बेगमकी भी कबर है। इस कबरकी रचना ताजमहलके नमूने पर की गई है, और इसके मध्य भागमें संगमरमरका काम, तथा उसमें लालरंगकी कारीगरी बहुत शोभायमान देख पडती है। इस इमारतके चारों कोने जितने सुन्दर होने चाहिए, उतने सुन्दर नहीं हैं—तोभी, इसमें सन्देह नहीं, कुल मसाजिद दर्शनीय है। इस इमारतके ऊपर चढकर देखनेसे आसपासका दृश्य बहुत ही मनोहर दिखाई देता है। यह इमारत ९९ फीट ऊँची है।

सफदरजंगके मकबरेसे कुछ अन्तर पर एक मार्ग जाता है। वहाँ 'हौज ए-खास' नामका एक स्थान है। यहाँ पर पहले सुलतान अलाउद्दीन खिलजीके समयका एक प्राचीन तालाब था। वहाँ फीरोजशाह तुगलकने सन् १३५४ ईसवीमें एक विद्या-मन्दिर बनवाया था, जिसमें यूसुफ बिन-फजल हुसेनी नामके एक विद्वान् पुरुषको अध्यापक नियत

होता है कि, मानो उससे निकलनेवाली मंजुल प्रतिध्वनि किसी संस्कृत कविकी वाणीमें यह कह रही है कि.—

वाणी ममैव सरसा यदि रञ्जयित्री
न प्रार्थये रसविदामवधानदानम्।
सायतनीषु मकरन्दवतीषु भृगा
किं मल्लिकासु परमंत्रणमारभन्ते ॥ १ ॥

अर्थात् मेरी कवितामें यदि रस है, और पढनेवालेको यदि उससे आनन्द होता है, तो मैं रसिक लोगोंसे उसकी तरफ ध्यान देनेकी, प्रार्थना नहीं करता। सायकालको भौरा पुष्परससे भरी हुई मल्लिकाकी तरफ आनेके लिए क्या किसीकी सलाह लेता है?

अस्तु। कवि खुसरोकी कवरका दर्शन करके बाहर आनेके बाद थोडी ही दूर पर दौरानखा और आजमखा नामक दो प्रसिद्ध पुरुषोंकी कब्रें है। इनके बाद वहॉ दो फुटके अन्तर पर 'चौसठ खम्भा' नामक एक दरगाह मिलती है। इस इमारतमें चौंसठ खम्मे हैं। इसी लिए इसको 'चौसठ खमा' नाम प्राप्त हुआ है। इसकी बनावट और रचना शाहजहॉके समयकी इमारतोंके समान सुन्दर और मनोहारी है। इसे देखनेसे जान पडता है कि, मानो यह इमारत 'दीवान-ए खास' नामक सौन्दर्य्य-मन्दिरका पहलेका नमूना ही है। इस इमारतमें सब जगह बढिया सगमरमरका काम किया हुआ है। इसका आकार चौरस है। इस इमारतमें अकबर बादशाहके सेनापतिके लडके अजीमखाकी कबर है। यह अजीमखा गुजरातका गवर्नर था। यह प्राचीन धर्म्मका कट्टर अभिमानी था, अतएव इसको अकबर बादशाहका नवीन धार्मिक सुधार पसन्द नहीं था। परन्तु अकबरने कभी उससे किसी प्रकारका आग्रह नहीं किया, और उसको उसके ही मतानुसार चलने दिया। यह मनुष्य वडा धर्मात्मा था, और गरीब-गुरबोंको सर्वदा अन्नदान किया करता, तथा मुहरें बॉटा करता था। इस लिए उसके विषयमें दिल्लीके गरीब

लोगोंमें इस अर्थकी एक कहावत प्रचलित हो रही है कि, " परोपकारी अजीमखा गरीबोंको सिर्फ भोजन ही नहीं देता, किन्तु साथही दक्षिणा भी देता है।" निस्सन्देह, जो सज्जन अपने धनका उपयोग परोपकारमें करते है, उनकी कीर्ति अजरामर हो जाती है।

सफदर-जंगका मकबरा।

हुमायूँ बादशाहकी कबरसे अन्त तक जो रास्ता जाता है, उसके सिरे पर नवाब मनसूरखा उर्फ सफदरजगकी कबर है। नवाब सफदरजङ्ग दिल्लीकी राजनीतिका एक प्रसिद्ध सूत्रधार था, और अयोध्याके पहले नवाब सआदतखाके बाद उसकी गद्दीका स्वामी हुआ। यह दिल्लीके बादशाह अहमदशाहका प्रधान मन्त्री था, अतएव दिल्लीके राजनैतिक मामलोंमें इसका मुख्य हाथ रहता था। सन् १७५३ इसवीमें दिल्लीमें इसकी मृत्यु हुई। उसकी यह कबर उसके पुत्र, अयोध्याके तीसरे नवाब सुजाउद्दौलाने, तीन लाख रुपये खर्च करके, बनवाई है। इस इमारतमें सफदरजगके साथ उसकी बेगमकी भी कबर है। इस कबरकी रचना ताजमहलके नमूने पर की गई है, और इसके मध्य-भागमें सगमरमरका काम, तथा उसमे लालरगकी कारीगरी बहुत शोभायमान देख पडती है। इस इमारतके चारों कोने जितने सुन्दर होने चाहिए, उतने सुन्दर नहीं है— तोभी, इसमें सन्देह नहीं, कुल मसाजिद दर्शनीय है। इस इमारतके ऊपर चढकर देखनेसे आसपासका दृश्य बहुत ही मनोहर दिखाई देता है। यह इमारत ९९ फीट ऊँची है।

सफदरजगके मकबरेसे कुछ अन्तर पर एक मार्ग जाता है। वहाँ 'हौज ए-खास' नामका एक स्थान है। यहाँ पर पहले सुलतान अलाउद्दीन खिलजीके समयका एक प्राचीन तालाब था। वहाँ फीरोजशाह तुगलकने सन् १३५४ ईसवीमें एक विद्या-मन्दिर बनवाया था, जिसमें यूसुफ-बिन-फजल हुसेनी नामके एक विद्वान् पुरुषको अध्यापक नियत

किया था। उसकी कब्र अभी तक वहाँपर मौजूद है। उसके पास ही फीरोजशाहका मकबरा है। यह बादशाह सन् १३८८ ईसवीमें मृत्युको प्राप्त हुआ। अवश्य ही, यह कबर उसके बाद बनाई गई है।

राजा जयसिंहकी वेधशाला।

सफदरजंगके मकबरेसे पाँच मीलकी दूरीपर कुतुबमीनारकी इमारत है। यहाँसे 'अजमेरगेट' की ओर दूसरी सडक जाती है। उसके दरमियानमें जयपुरके राजा जयसिंहकी वेधशाला है। यह अत्यन्त दर्शनीय है, और उस विद्वान् तथा ज्योतिष-शास्त्र-विशारद राजाका एक उत्तम स्मारक है। राजा सवाई जयसिंह हिंदुस्तानके इतिहासमें एक अद्वितीय रत्न था। यह राजा राजनीति, रणभूमि और पंडितोंकी सभामें एकसा चमकता था। वर्तमान जयपुर नगर इसी राजाने बनवाया; और वहाँपर अपनी राजधानी नियत की। दिल्लीके दरबारमें इसका अच्छा प्रभाव था, और मराठोंको "चौथ" तथा "सरदेशमुखी" की सनदें दिलाने तथा उनके हितसाधन करनेका अधिकांश श्रेय इसीको है। बडे बाजीराव पेशवाको मालवेकी सूबेदारी इसीने प्राप्त करा दी थी। इसने ज्योतिष-शास्त्रका अच्छा अध्ययन किया था, और उसके लिए उसने दिल्ली, उज्जैन, काशी, इत्यादि स्थानोंपर वेधशालाएँ बनाई है। 'कल्पद्रुम' इत्यादि इसके कुछ ग्रन्थ भी प्रसिद्ध है। ऐसे बहुगुण-सम्पन्न राजाकी इस वेधशालाको देख कर प्रत्येक दर्शकके हृदयमें आनन्दकी लहरें उमडने लगती है, और उसकी गुणग्राहकता पर बडा कौतूहल होता है।

दिल्लीकी यह वेधशाला अभी तक अस्तित्वमें है। उसका असली नाम 'सम्राट्-यन्त्र' है। परन्तु यह नाम उच्चार करनेमें कठिन मालूम होता है, इसलिए आजकल इसको, "जतर-मतर" कहते है। यह वेधशाला सन् १७२४ ईसवीमें बनवाई गई। ग्रहोंका वेध लेनेके लिए जो शंकुयंत्र

तैयार किया गया है, वह जीनेके आकारका है। उसका कर्ण ११८ फुट ५ इच है। आधार उसका १०४ फुट और लम्ब ५६ फुट ७ इच है। परन्तु अब यह इमारत बहुत खराब हो गई है। इस इमारतके पास एक छायायत्र बनाया गया है। यह इमारत रोमन लोगोंके नाटकगृहके समान वृत्ताकार है, और उसके बीचमें एक जीना है, जो बराबर छत तक चला गया है। चारों ओर, क्षितिजसे एक बिन्दुमें आनेवाली, अर्धवृत्ताकार कमानियाँ बनी हुई है। वे वेधशालाकी याम्योत्तर रेखामें एक विशिष्ट अन्तर पर हैं, और बगलकी याम्योत्तर रेखा दिखलाती है। ज्योतिष-शास्त्रज्ञोंको वेध लेनेके लिए जिन जिन शास्त्रीय साधनोंकी आवश्यकता होती है, उन सबका यहा अच्छी तरह प्रबन्ध किया गया है। यहाँ पर त्रिकोण और उसके अश बहुत अच्छी तरह लगा रखे हैं, जिनसे दिनका काल मापन ठीक ठीक होता है, और घाटिकाओं तथा पलोंका भी ठीक ठीक बोध होता जाता है। इस प्रकारके दो छायायत्र पास ही पास है, इससे जान पडता है कि, एकके मापनकी परीक्षा दूसरेमें की जाती होगी। इस वेध-शालासे, उसके रचयिताकी विशाल बुद्धि और ज्योतिषशास्त्र-पारगतताका अच्छा अनुमान होता है। राजा जयसिहके बाद इस वेध-शालाका वैसा उपयोग करनेवाला और कोई मनुष्य नहीं निकला, और इसी कारण इस वेधशालाकी बड़ी दुर्दशा हो रही है। तथापि जो जो विद्वान् पुरुष दिल्लीमें जाते है और इस छायाचित्र तथा वेधशाला-का दर्शन करते है, वे राजा सवाई जयसिहकी तारीफ किये बिना नहीं रहते। वर्तमान समयमें यह इमारत, और उसके पासका माधवगज नामक गाव, सवाई जयसिहके वशज, जयपुर, रियासतके वर्तमान अधिपति, महाराजाधिराज सर सवाई माधवसिंहके अधिकारमें है। आशा है, आप अपने पूर्वजोंके इस अत्युत्तम स्मारकको सुरक्षित रखेंगे। क्योंकि अपने पूर्वजोंकी कृतिकी रक्षा करना भी एक पवित्र कार्य है।

छठा प्रकरण।

हिन्दू राजाओंके प्राचीन स्मारक।

लोहस्तम्भ।

जब हम कुतुबमीनार देखनेके लिए जाते हैं, तब वहाँके विस्तीर्ण भूप्रदेश पर हमें अनेक प्राचीन और जीर्ण किले, कोट और इमारतें दिखाई देने लगती है। ये सब उस समयके प्राचीन स्मारक-चिन्ह है, जब कि दिल्लीमें हिन्दू राजाओंकी स्वतत्र राज्यसत्ता और राज्यवैभव मौजूद था। अब इसमें कुछ भी सन्देह नहीं रहा है कि, यहाँ पर उन शक राजाओंकी बृहत् राजधानी थी, कि जिनको ईसवी सनके ७८ वें वर्षमें राजा विक्रम ने जीता था। यहाँके लोहस्तम्भसे मालूम होता है कि, सन ३१९ ईसवीमें यहाँ गुप्त राजाओंकी राजधानी होगी। परन्तु इसके बाद, आठवीं शताब्दीके मध्य तक, अर्थात् तुवरवशीय राजा अनगपाल तक, यहाँ राजधानी थी, अथवा नहीं-यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कनिंगहम साहबके लेखसे यह जान पडता है कि, राजा अनगपाल जब तक अवतीर्ण नहीं हुआ था, तब तक यह राजधानी विध्वसावस्थामें थी। इससे जान पडता है, अनगपालने इसे फिर बसाया। हा, प्राचीन ऐतिहासिक सामग्रीसे इतना अवश्य सिद्ध होता है कि, दिल्लीमें तुम्वर घरानेके राजाओंका राज्य अनेक वर्षों तक था। यहा तक कि, उनकी सत्ता हिमालयसे लेकर विंध्याचल पर्वत तक फैली हुई थी। इस समय जहा कुतुबमीनार और उसके आसपासका प्रदेश है, वहीं इन राजाओंकी नगरी थी। उन्होंने जो नगरी बसाई, और बादमें चौहान वंशके राजाओंने उसमें जो सुधार किये, उनका सम्पूर्ण स्वरूप आज दिखाई नहीं देता, परन्तु उनके जमानेके

कुछ स्मारक अब तक दिखाई पडते है, उनका संक्षिप्त वृत्तान्त यहाँ दिया जाता है।

यह लोहस्तम्भ भारतकी अपूर्व और अलौकिक वस्तुओंमेंसे एक है। हिन्दुस्तानमें आज तक पीतलकी बडी बडी मूर्तियाँ, और पचधातुके छोटे-बडे, सब प्रकारके, पुतले बहुतसे बने थे, परन्तु लोहरसका इतना बृहत् स्तम्भ अब तक किसीने तैयार नहीं किया था। वैज्ञानिक उन्नतिके वर्तमान युगमें ऐसे अद्भुत कार्य चाहे सहजहीमें हो जायँ, परन्तु आश्चर्य्य इस बातका है कि, इतने पुरातन कालमें हमारे भारत-वर्षमें ऐसे ऐसे अलौकिक कार्य हुए है! यह स्तम्भ असढ है, और बिल-कुल लोहरसका बना हुआ है। इसकी कुल ऊँचाई २५ फुट है, और धरतीसे यह २२ फुट ऊँचा है। पहले लोग समझते थे कि, यह धरतीमें बहुत नीचे तक गडा है। परन्तु सन् १८७२ ईसवीमें प्राचीन वस्तु-अन्वेषकोंने इसकी गहराईका, बडी सूक्ष्म दृष्टिसे, निरीक्षण करके यह निश्चित किया कि, इसकी गहराई सिर्फ तीन फुट है। उनका मत यह है कि, धरतीके भीतर, वृक्षोंकी जडें, जिस तरह नीचे नीचे जाकर वृक्षके तनेको मजबूत बनाती है, उसी तरह इस स्तभके नीचे लोहेकी सपच्चियां लगाकर उसे पक्का बनाया है। इस स्तम्भका व्यास १६ इच है। कुछ अन्वेषकोंका अनुमान है कि, इस स्तभका वजन साढे सत्रह टनसे भी अधिक है। यह स्तम्भ शुद्ध लोहेका है, और उसका विशिष्ट-गुरुत्व ७ ६६ है।

इस स्तम्भका मध्य भाग चिकना है, और उसपर निम्नलिखित सस्कृत लेख खुदा है.—

यस्योद्वर्तयत. प्रतीपमुरसा शत्रून्समेत्यागतान्।
वगेष्वाहववर्तिनोभिलिखिता खड्गेन कीर्तिर्भुजे॥
तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिंधोर्जिता वाह्लिका।
यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिलैर्दक्षिण ॥ १ ॥

छठा प्रकरण।

हिन्दू राजाओंके प्राचीन स्मारक।

लोहस्तम्भ।

जब हम कुतुबमीनार देखनेके लिए जाते हैं, तब वहाँके विस्तीर्ण भूप्रदेश पर हमें अनेक प्राचीन और जीर्ण किले, कोट और इमारतें दिखाई देने लगती है। ये सब उस समयके प्राचीन स्मारक-चिन्ह है, जब कि दिल्लीमें हिन्दू राजाओंकी स्वतत्र राज्यसत्ता और राज्यवैभव मौजूद था। अब इसमें कुछ भी सन्देह नहीं रहा है कि, यहाँ पर उन शक राजाओंकी बृहत् राजधानी थी, कि जिनको ईसवी सनके ७८ वें वर्षमें राजा विक्रम ने जीता था। यहाँके लोहस्तम्भसे मालूम होता है कि, सन् ३१९ ईसवीमें यहाँ गुप्त राजाओंकी राजधानी होगी। परन्तु इसके बाद, आठवीं शताब्दीके मध्य तक, अर्थात् तुबरवशीय राजा अनगपाल तक, यहां राजधानी थी, अथवा नहीं-यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कनिगहम साहबके लेखसे यह जान पडता है कि, राजा अनगपाल जब तक अवतीर्ण नहीं हुआ था, तब तक यह राजधानी विध्वसावस्थामें थी। इससे जान पडता है, अनगपालने इसे फिर बसाया। हा, प्राचीन ऐतिहासिक सामग्रीसे इतना अवश्य सिद्ध होता है कि, दिल्लीमें तुम्वर घरानेके राजाओंका राज्य अनेक वर्षों तक था। यहा तक कि, उनकी सत्ता हिमालयसे लेकर विंध्याचल पर्वत तक फैली हुई थी। इस समय जहां कुतुबमीनार और उसके आसपासका प्रदेश है, वहीं इन राजाओंकी नगरी थी। उन्होंने जो नगरी बसाई, और बादमें चौहान वंशके राजाओंने उसमें जो सुधार किये, उनका सम्पूर्ण स्वरूप आज दिखाई नहीं देता, परन्तु उनके जमानेके

कुछ स्मारक अब तक दिखाई पडते है, उनका सक्षिप्त वृत्तान्त यहाँ दिया जाता है।

यह लोहस्तम्भ भारतकी अपूर्व और अलौलिक वस्तुओंमेंसे एक है। हिन्दुस्तानमें आज तक पीतलकी वडी वडी मूर्तियाँ, और पचधातुके छोटे-वडे, सब प्रकारके, पुतले बहुतसे बने थे, परन्तु लोहरसका इतना बृहत् स्तम्भ अब तक किसीने तैयार नहीं किया था। वैज्ञानिक उन्नतिके वर्तमान युगमें ऐसे अद्भुत कार्य चाहे सहजहीमें हो जायँ, परन्तु आश्चर्य्य इस बातका है कि, इतने पुरातन कालमें हमारे भारत-वर्षमें ऐसे ऐसे अलौकिक कार्य हुए है। यह स्तम्भ अखंड है, और बिल-कुल लोहरसका बना हुआ है। इसकी कुल उँचाई २५ फुट है, और धरतीसे वह २२ फुट ऊँचा है। पहले लोग समझते थे कि, यह धरतीमें बहुत नीचे तक गडा है। परन्तु सन् १८७२ ईसवीमें प्राचीन वस्तु-अन्वेषकोंने इसकी गहराईका, बडी सूक्ष्म दृष्टिसे, निरीक्षण करके यह निश्चित किया कि, इसकी गहराई सिर्फ तीन फुट है। उनका मत यह है कि, धरतीके भीतर, वृक्षोंकी जडें, जिस तरह नीचे नीचे जाकर वृक्षके तनेको मजबूत बनाती है, उसी तरह इस स्तभके नीचे लोहेकी खपच्चियां लगाकर उसे पक्का बनाया है। इस स्तम्भका व्यास १६ इंच है। कुछ अन्वेषकोंका अनुमान है कि, इस स्तभका वजन साढे सत्रह टनसे भी अधिक है। यह स्तम्भ शुद्ध लोहेका है, और उसका विशिष्ट-गुरुत्व ७ ६६ है।

इस स्तम्भका मध्य भाग चिकना है, और उसपर निम्नलिखित संस्कृत लेख खुदा है —

> यस्योद्वर्तयत. प्रतीपमुरसा शत्रून्समेत्यागतान्।
> वगेष्वाहववर्तिनोभिलिखिता खड्गेन कीर्तिर्भुजे॥
> तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिंधोर्जिता वाल्हिका।
> यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिलैर्दक्षिण ॥ १॥

खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपतेर्गामाश्रितस्येतराम् ।
मूर्त्या कर्मजितावनिं गतवतः कीर्त्या स्थितस्य क्षितौ ॥
शान्तस्येव महावने हुतभुजो यस्य प्रतापो महान् ।
अद्याप्युत्सृजति प्रणाशितरिपोर्यत्नस्य शेषः क्षितिम् ॥ २ ॥
प्राप्तेन स्वभुजार्जितं च सुचिरं चैकाधिराज्यं क्षितौ ।
चन्द्राह्वेन समग्रचन्द्रसदृशीं वक्त्रश्रियं बिभ्रता ॥
तेनायं प्रणिधाय भूमिपतिना धावेन विष्णौ मतिं ।
प्रांशुर्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः ॥ ३ ॥

ये तीन श्लोक, प्रत्येक पक्तिमें दो चरणोंके क्रमसे, छै पक्तियोंमें खुदे हैं। ऊपर लिखे हुए श्लोकोंका भावार्थ यह है कि, "यह स्तम्भ मानो उस चन्द्र नामके राजाका भुजही है कि, जिसने, वग देशमें ऐक्य करके आक्रमण करनेवाले शत्रुओंकी, नाकमें दम करके, खड्गसे अपनी कीर्ति लिख रखी है। उस राजाने सिन्धु नदीके सप्तमुखोंको पार करके बाल्हिक लोगोंको जीता, दक्षिणीसमुद्र तो उसकी प्रताप-वायुसे अभी तक सुगन्धित हो रहा है। जैसे किसी बडे भारी जगलमें प्रज्ज्वलित प्रचड वडवानल, प्राय समस्त जगलको भस्मीभूत करके शान्त हो जाने पर भी, कुछ अवशिष्ट अवश्य रहता ही है, उसी प्रकार शत्रुओंकी चेष्टाओंको पूर्ण रीतिसे विफल करके, यद्यपि यह राजा खिन्नतासे इस पृथ्वीको छोड कर, मूर्तिमात्रसे, स्वपुण्यार्जित स्वर्गलोकको चला गया है, तथापि कीर्तिरूपमें वह यहाँ अवश्य वर्तमान है। अपने भुजाओंके पराक्रमसे प्राप्त किया हुआ चक्रवर्तित्व जिसने चिरकाल तक भोगा, जिसके मुखकी कान्ति पौर्णिमाके चन्द्रके समान है, उस चन्द्राजने, भगवान् विष्णुके प्रति अपने चित्तको भक्तिपूर्वक अर्पण करके, विष्णुपद नामक गिरि पर, भगवान् विष्णुका यह उच्च ध्वज स्थापित किया है।"

यह राजा चन्द्र कौन है, अथवा कब हुआ इसका अभी तक निर्णय नहीं हुआ है। इन श्लोकोंमेंसे अन्तिम श्लोकके तीसरे चरणमें 'धावेन'

शब्द है। उसके अर्थके विषयमें मतभेद है। कई लोगोंने 'धावेन' का अर्थ किया है-"धाव' नामक, राजाने", और कई लोगोंका मत है कि, 'धावेन' शब्दकी जगह 'भावेन' शब्द हो सक्ता है, जिसका अर्थ "भक्तिसे" होता है। ऐसी दशामें यही कहना पडता है कि, राजाके नामका निर्णय अभी सन्देहावस्थामें ही है।

इस लोहस्तम्भके विषयमें एक दन्तकथा पहले प्रकरणमें दी जा चुकी है। उसी तरहकी एक दन्तकथा और है। यह दतकथा शाहजहाँ बादशाहके यहा रहनेवाले किसी खड्गराय नामक कविने लिखी है। उसका साराश यह है कि, व्यास नामक किसी ऋषि, अथवा ब्राह्मणने, तोमर राजाको पचीस अगुल लम्बी सोनेकी एक सलाई दी, और उसको, अच्छे मुहूर्त पर, जमीनमें गाड देनेके लिए कहा। तदनुसार उसने सम्वत् ७९२ (सन् ७३६ ईसवीमें) वैशाख वद्य १३ को, अभिजित नक्षत्रमें चन्द्रके रहते समय, उसको जमीनमें गाड दिया। उस समय व्यासने उसको यह आशीर्वाद दिया कि, तुमसे राज्य कभी नहीं जायगा, यह खूटी वासुकी के मस्तक पर गडी है।" परन्तु राजाने व्यासके इन वचनोंकी प्रतीति लेनेके लिए उस सलाईको उखाडकर देखा, तो वह रक्तसे भरी हुई निकली! इस पर राजाने अत्यन्त भयभीत होकर उस ब्राह्मणको फिर बुलाया, और सारा समाचार प्रकट किया। उस समय ब्राह्मणने राजाको फिर उस सलाईको गाडनेकी आज्ञा दी। तदनुसार राजाने, उसको गाडनेका प्रयत्न किया, परन्तु १९ अगुलसे अधिक वह नहीं गड सकी। इस पर उस ब्राह्मणने कहा, "राजा, अब तुम्हारा राज्य बहुत दिन न टिकेगा। इस सलाईकी तरह वह अब ढीला हो गया। वह सिर्फ १९ वर्ष और टिकेगा। इसके बाद चौहान राजा होंगे, और फिर तुर्क लोग राज्य करेंगे।" ब्राह्मणका यह भाषण सुनकर राजा बडा सतप्त हुआ, और उस ब्राह्मणको विदा किया। इसी प्रकारकी

दन्तकथाए दिल्लीमें लोहस्तम्भ देखते समय सुननेमें आती है, जिनको सुन कर दर्शकोंको अत्यन्त कौतूहल मालूम होता है।

लालकोट और रायपिथौरा।

राजा अनगपालके नामसे प्रसिद्ध होनेवाला उपर्युक्त लोहस्तम्भ देख-कर दर्शकगण आश्चर्यचकित होते है कि, इतनेमें उनको चौहान राजाके समयके लालकोट ओर रायपिथौरा नामक प्राचीन किले दिखाई देने लगते है। ये दोनों इमारतें यद्यपि आज गिरी दशामें है, तथापि इनको देखकर चौहान राज्यसत्ताका अब भी स्मरण हो आता है। अहा! कालकी क्या ही अतर्क्य लीला है! इन किलोंमें आजकल वस्ती विल-कुलही नहीं है, अतएव नितान्त निर्जन और उदास दिखाई देते है। इनमें-से लालकोटका किला पृथ्वीराजने वनवाया है। इस कोटके एक कोनेसे रायपिथौरा नामक किलेकी दीवारें स्पष्ट दिखाई देती है। लालकोट पृथ्वीराजकी राजधानीका कोट था, और उसको मजबूत बनानेके लिए फिरसे यह दूसरा किला वनाया गया था। लालकोट और रायपिथौरा-का विस्तार शाहजहानाबाद (नई दिल्ली) से करीब आधेसे अधिक था। लालकोटका घेरा सवा दो मील है, औरं उसकी दीवारें ऊँची तथा भारी है। उसका कोट तीस फुट ऊंचा है, ओर दीवारोंकी उँचाई कमसे कम साठ फुट थी। इस किलेका आधा भाग अब तक मौजूद है, और उसका खदक तथा मारकेकी जगहें अच्छी दिखाई देती है। उसके बुर्ज प्राय नष्ट हो गये है, तो भी कुछ बुर्जोंके चिन्ह स्पष्ट दिखाई देते है। पश्चिम ओर तीन दरवाजे तो अच्छी तरह पहचाने जा सकते है, और जान पडता है, उनकी चौडाई १७ फुट होगी।

कहते है कि, रायपिथौरा नामक किला मुसलमानोंकी पहली चढाई-के वाद पृथ्वीराजने वनवाया। इस किलेका घेरा साढे चार मील था। परन्तु यह इमारत चूंकि कुछ जल्दी-जल्दीमें वनवाई गई, अतएव,

जितनी चाहिए, उतनी मजबूत यह नहीं बन सकी, तथापि कहते हैं कि, यह किला बहुत भारी था, और उसमें दस दरवाजे थे। उनमेंसे आठ दरवाजोंका अब भी पता लगता है। इस किलेमें हिन्दुओं और बौद्धोंके मिलाकर कुल सत्ताईस मन्दिर थे। उनके हजारों खम्भे और कलश हिन्दू धर्मका द्वेष करनेवाले यवन बादशाहोंने छिन्नविच्छिन्न कर दिये! हा, उनका दीन स्वरूप अब भी अपने दुर्भाग्यके लिए रो रहा है!

दिल्लीके लालकोटकी तैयारीके विषयमें एक स्थानपर संवत् १११७ का उल्लेख है, जिससे जान पड़ता है कि, यह सन् १०६० ईसवीमें बनवाया गया। इसके बाद रायपिथौरा किला बनाया गया। राजा पृथ्वीराज प्राचीन हिन्दू राजाओंमें श्रेष्ठ थे; और भाट लोगोंने उनके पराक्रमका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इस विषयमें चन्द नामक राजपूत भाट (कवि) का ‘ पृथ्वीराजरासो ’ बहुत प्रसिद्ध है।

सातवाँ प्रकरण।



कुतुबमीनार।

भारतमें जो अलौकिक और विचित्र इमारतें पाई जाती है, उन्हीमे कुतुबमीनार भी एक है। यह गगनचुम्बित अत्युत्तम इमारत दिल्लीसे ग्यारह मील दूर है। इस इमारतको भूकम्प और विद्युत्-आघातसे यद्यपि थोडासा धक्का पहुँचा है, तथापि उन आघातोंसे भी सुरक्षित रहकर वह अब तक अपनी अपूर्वतासे समस्त ससारको चकित कर रही है। यदि पेरिसका 'एफेल टावर' नामक लोहेका मीनार, जो पेरिस-प्रदर्शनीके समय हालहीमें बनाया गया है, छोड़ दिया जाय, तो सारे ससारमें इस मीनारके बराबर ऊँचा मीनार नहीं है। यह इमारत जमीनसे २३८ फुट १ इञ्च ऊँची है। उसके निचले भागका व्यास ४७ फुट २ इंच और शीर्षभागका व्यास ९ फुट है। इस मीनारका बिलकुल निचला खड २ फुट ऊँची कुर्सी पर है, बीचकी इमारत २३४ फुट १ इच ऊँची है, और अन्तिम गुम्बजकी उँचाई २ फुट है। इस प्रकार कुल मिलाकर उपर्युक्त २३८ फीट १ इचकी उँचाई होती है। कहते है कि, पहले यह मीनार ३०० फुट ऊँचा था, और कुल सात खडका था। परन्तु आजकल, उसके बिलकुल अन्तिम खड सहित, उसमें केवल पाच ही खड है।

कुतुबमीनारकी इमारत मुसलमान बादशाहोंने बनवाई है, परन्तु यह बृहत् कार्य मुसलमान कारीगरोने किया, अथवा हिंदू कारीगरोंने किया, यह एक बडा भारी प्रश्न है। गजनीके महमूदने जिस तरह मथुराके राजमहलका सामान और सोमनाथके मन्दिरके दरवाजे गजनी ले जाकर अपना महल सुशोभित किया, उसी तरह सभव है कि, इस

मीनारका बहुत सा नक्काशीका काम हिन्दू देवालयोंसे लिया गया हो। यदि यह बात सच है, तो इस इमारतके शिल्पकौशलका बहुतसा श्रेय हिन्दू कारीगरोंको भी देना होगा। कलकत्तेके प्रसिद्ध प्राक्कालीन-वस्तु-अन्वेषक डा० राजेन्द्रलाल मित्रने पिछले दिनों इस विषयमें वाद उपस्थित किया था, और उन्होंने यह सिद्ध किया था कि, यह अलौकिक इमारत हिन्दुओंके कलाकौशलका ही स्मारक है। इस मीनार पर कुछ नागरी अक्षर खुदे हुए है, इससे भी इस बातकी पुष्टि होती है कि, इसकी रचनामें हिन्दू शिल्पकारोंका हाथ था। अस्तु। इसकी रचनाके विषयमें कुछ भी मतभेद क्यों न हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, यह इमारत भारतके लिए अवश्य ही एक गौरव का कारण है।

कुतुबमीनार सन् १३२५ ईसवीमें पूरा हुआ। इससे मालूम होता है कि, यह इमारत लगभग छै सौ वर्षसे दिल्लीकी राज्यक्रान्तियों और उथला-पथलोंका अवलोकन कर रही है। अतएव इस इतिहासप्रसिद्ध इमारतको देखकर प्रत्येक मनुष्यको, उसके विषयमें अभिमान और आदर-भाव मालूम होता है।

कुतुबमीनारकी अत्युच्च इमारत पर खडे होकर, आसपास दृष्टि डालनेसे, दस कोस विस्तारवाले प्राचीन दिल्ली शहरकी सैकडों विध्वसित इमारतें दृष्टिगोचर होती है, जिनको देखनेसे यह मालूम होता है कि, मानो यह कुतुबमीनार, यह दिखलानेके लिए, कि देखो मै कैसा सबमें श्रेष्ठ हूँ, बडी शानके साथ खडा है। उसकी विशाल रचना, उसकी सुन्दर नक्काशी, उसका भव्य स्वरूप, और उसकी कायदेकी उँचाई, देखकर दर्शकोंको आनन्द और आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। सारे ससारकी कबरोंमें जिस तरह आगरेका ताजमहल श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सारे मीनारोंमें दिल्लीका कुतुबमीनार श्रेष्ठ है। जिस तरह ताजमहलका अप्रतिम सौन्दर्य्य देखकर रसिक दर्शकोंको अत्यन्त हर्ष होता है, और

आश्चर्यके कारण वे यह नहीं सोच सकते कि, "ताजमहल हृदयमें रखें, अथवा हृदय ही ताजमहलमें रख दें"—बस यही हाल यहा भी दर्शकोंका होता है। कुतुबमीनारकी इमारत एक बार देख लेने पर फिर हमें कभी उसका विस्मरण नहीं हो सकता। मतलब यह है कि, यह इमारत ससारमें एक अपूर्व वस्तु है। पेरिसका 'एफेल टावर' नामक मीनार लोहेका है, अतएव उसकी बात हम नहीं कहते, किन्तु अलेक्जेन्ड्रियाका पाम्पीका जयस्तम्भ; केरोकी हसनकी मसजिदका मीनार, अथवा सेंटपीटर्सबर्ग (वर्तमान पेट्रोग्राड) का 'अलेक्जेन्ड्राइन कालम' इत्यादि सब अत्यन्त ऊची ऊची इमारतोंको कुतुबमीनारके आगे अपना मस्तक झुकाना पडेगा।

यह मीनार यद्यपि इतना ऊँचा है, तथापि उसके भीतरका जीना बहुत अच्छा है। पाँचों खडोंमें सब मिलाकर कुल ३७८ सीढियाँ है। भीतरकी ओर वायु और प्रकाशकी यथायोग्य सुविधा है, और प्रत्येक खड पर गैलरियाँ बनी हुई है, अतएव दर्शकोंको बडा आराम रहता है। प्रत्येक खंड पर गैलरी होनेके कारण ऐसा जान पडता है कि, मानों इस इमारतमें ठौर ठौर पर कमरबन्द कसे है। इससे इमारतको विशेष शोभा प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त इस इमारत पर अनेक शिल्प-लेख भी हैं; जिनमें कुरानके वाक्य और परमेश्वरकी नाम मालिका दी हुई है। इससे इस इमारतके बनानेवालोंकी ईश्वरभक्तिका अच्छा परिचय मिलता है।

कुतुबुद्दीनकी मसजिद।

कुतुबमीनारके पास कुतुबुद्दीन बादशाहकी बनवाई हुई एक पुरानी मसजिद है। यह मसजिद उस समयका बिलकुल पहला स्मारक है, जब कि मुसलमानी धर्मका भारतवर्षमें प्रवेश हुआ। यह मसजिद, तथा इसके आसपासकी इमारतें, कुतुबुद्दीन, शम्सुद्दीन अल्तमश और

अलाउद्दीन खिलजी नामक तीन बादशाहोंके शासन-कालमें बनाई गई है। कुतुबुद्दीनकी मसजिदका नाम 'कुवत-उल्-इसलाम' है, जिसका अर्थ "इस्लाम धर्म्मकी शक्ति" है। इस मसजिदकी लम्बाई १५० फुट और चौडाई ७५ फुट है। इसके पूर्व और उत्तरके दरवाजे अभी तक कायम है, और उनके शिला-लेख स्पष्ट दिखाई देते है। यह इमारत, हिन्दू तथा जैनमन्दिरोंको तोड़ कर, उन्हींकी सामग्रीसे बनाई गई है। इस लिए यह स्पष्ट जान पडता है कि, इसके प्रत्येक खम्भे पर जो नक्काशी है, वह हिन्दुओंकी है। इन खम्भोंके बेलबूटे, पुष्पमालाएँ, और नाना प्रकारकी सुन्दर आकृतियाँ देखने लायक है। विशेषत', इस मसजिदके उत्तरकी ओरकी दालानमें बहुत ही बढिया नक्काशी की हुई है। इस सम्पूर्ण हिन्दू शिल्पकार्यके वर्तमान स्वरूपको देखकर अत्यन्त खेद होता है! इस सम्पूर्ण इमारतको एक बार देखनेसे ऐसा भास होता है कि, इसके सब खम्भे और बेलबूटेदार पत्थर, जो पहले हिन्दू मन्दिरोंमें रामकृष्णका भजन-पूजन देखते हुए आनन्दसे वास करते थे, वे यहाँ पर अत्याचारपूर्व्वक लाये जाने तथा मुसलमानी धर्म्मकी दीक्षा दिये जानेके कारण, मानो शोक सा कर रहे हैं! हिन्दुओं तथा जैनियोंकी मूर्त्तिया इस इमारतमें न देख पडें—इस लिए उन पर चूनेका बढिया मुलम्मा चढाकर उनका स्वरूप बिलकुल बदल दिया गया था, परन्तु काल-गतिसे वह चूनेका पलास्तर जीर्ण हो गया, और वे अदृश्य मूर्तिया अब धीरे धीरे दिखाई देने लगी है। यहा पर यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि, हिन्दुओंकी मूर्त्तियों पर आये हुए पटल कालान्तरसे आप ही आप नष्ट होगये, और उनका पहलेका स्वरूप व्यक्त हो गया! क्योंकि, हमारे हिन्दू धर्म्मका यह विशेष गुण ही है कि, उस पर चाहे जितने सङ्कट आवें, पर-धर्म्मके कितने ही पटल उस पर आकर क्यों न जम जायँ, तथापि उसका असली उज्वल स्वरूप कभी नष्ट नहीं हो

सकता । इसी अद्वितीय गुणके कारण, हमारा हिन्दू धर्म्म, मुसलमानोंके धर्मोन्मादकी कुछ भी परवा न करते हुए, बराबर टिका रहा । अस्तु । इस मसजिदमें एक स्थान पर कृष्णजन्मका भी एक चित्र है, और एक सवत्सा धेनुका चित्र है । ये दोनों चित्र भी देखने लायक है ।

इस मसजिदके प्रति मुसलमानोंका पहले ही से बड़ा पूज्य-भाव है। कई मुसलमान इतिहासकारों और प्रवासियोंने इसका वर्णन किया है, और उसमें यह भी स्पष्टतापूर्वक स्वीकार किया है कि, यहाँ पर पहले हिन्दुओंका देवालय था । इब्नबतूटा नामक प्रवासीने इसके विषयमें यह लिखा है—

" Its mosque is very large, and in beauty and extent has no equal Before the taking of Delhi it had been a Hindu temple. "

अर्थात् " यह मसजिद बहुत बडी है, और सौन्दर्य तथा विस्तारमें अपना सानी नहीं रखती । दिल्लीके हस्तगत करनेके पहले यहा हिन्दुओं का मन्दिर था । "

खुसरो कविने इस मसजिदका इस प्रकार वर्णन किया है.—

"The mosque of it is the despository of the grace of god. The music of the prayer of it reaches to the sky "

" अर्थात् मसजिद क्या है, परमात्माके अनुग्रहका निवासस्थान है । वहाँकी प्रार्थना स्वर्ग तक जाती है ।

अस्तु । इस स्थानके पास सुलतान शमसुद्दीन अल्तमशकी कबर है । वह बडी सुन्दर है, और उसका प्राचीन हिन्दू-शिल्पकार्य अत्यन्त दर्शनीय है । इसके विषयमें मि० फर्ग्युसनने लिखा है कि, " यह इमारत यद्यपि छोटी है, तथापि हिन्दू कारीगरोंके कौशलका यह अप्रतिम नमूना है, और प्राचीन दिल्लीकी दर्शनीय इमारतोंमें भी यह अग्रगण्य

है। ” इस कबरके अतिरिक्त यहाँ ‘ अलाई दरवाजा ’ नामक एक सुन्दर दरवाजा भी है, जिसकी नक्काशी अत्यन्त प्रशसनीय है। कुतव मीनार, कुतुबुद्दीनकी मसजिद, अल्तमशकी क़बर और अलाई दरवाजा, ये सब इमारतें पठान राजाओंके समयकी है, और निस्सन्देह प्रशसनीय हैं। बिशप हीवर नामक कुतूहलप्रिय प्रवासीने पठानोंकी उपर्युक्त इमारतोंको देखकर कहा है कि, “इन पठान राजाओंने राक्षसके समान इमारतें बनाई है, और उनकी नक्काशी रत्नकारके समान सुन्दर की है। ” यह कथन यहाँ अक्षरश सत्य प्रतीत होता है।

उपर्युक्त इमारतोंके अतिरिक्त दिल्लीमें फीरोजाबाद, तुगलकाबाद, बेगमपुर, आदि अनेक प्राचीन और इतिहासप्रसिद्ध स्थान हैं। वहाँ पर भी मसजिदें और कबरें बहुत हैं। इनके सिवाय, सन् १८५७ के बलवेमें जिन अँग्रेज वीरोंने शूरता दिखलाकर रणभूमिमें अपने प्राण दिये, उनकी कबरें, स्मारकस्तम्भ, इत्यादि अनेक अर्वाचीन बातें भी देखने योग्य हैं। इन सभीका वर्णन इस छोटीसी पुस्तकमें नहीं दिया जा सकता। तथापि, ये सभी स्थल दिल्ली जानेवाले दर्शकोंके देखने योग्य हैं।

अस्तु। इसमें सन्देह नहीं कि, दिल्ली अथवा इन्द्रप्रस्थका यह पुराण-प्रसिद्ध और इतिहास-प्रसिद्ध स्थल देखकर यह अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि, काल-चक्रकी गति कितनी विचित्र है। जहाँ हिन्दू राजाओं-की स्वतत्रता और राज्यसत्ता चमक रही थी, वहाँ काल-चक्रकी गतिसे मुसलमानोंका राज्य आया, बादको जब मुसल्मानी राज्यसत्ताका वैभव भी अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका, तब मराठोंका प्रभुत्व प्रस्थापित हुआ। इसके बाद मराठोंकी सत्ता भी न रही, और ब्रिटिश राज्यसत्ता यहा आकर सस्थापित हुई। इससे साफ मालूम होता है कि, राष्ट्रके उत्थान और पतनका चक्र बराबर जारी है। जो हो, दिल्ली अथवा इन्द्रप्रस्थ नगरका जब हम ऐतिहासिक दृष्टिसे अवलोकन करते है तब

हमें कविकुलगुरु कालिदासके इस कथनकी सत्यता भली भाति प्रतीत हो जाती है कि—

" नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।"

एक प्राचीन आग्ल कविने भी राष्ट्रोंके उत्थान और पतनके विषयमें ऐसा ही कहा है। वह कहता है—

" Empires and nations flourish and decay,
By turns command and in their turns obey "

अर्थात् " ससारका नियम है कि, बारी बारीसे सब राष्ट्रों और साम्राज्यों-का उत्थान तथा पतन होता रहता है। क्रमश वे दूसरों पर शासन करते, और फिर दूसरोंका शासन माननेके लिए बाध्य होते हैं।"

अस्तु। अँगरेजी राज्यमें भी हमारी इस वृद्धा दिल्ली माताने पूरा पूरा गौरव प्राप्त किया है। महारानी विक्टोरिया और महाराज सप्तम एडवर्डके राज्यारोहणसम्बन्धी महोत्सव इस दिल्लीमें ही बडी धूमधामसे सुसम्पन्न हुए। बादको सन् १९१२ ई० में सम्राट पचम जार्जने, स्वय इस पवित्र भूमिमें पधार कर, इसे फिरसे इसका गौरवपूर्ण राजधानी-पद प्रदान किया, और अपने राज्यारोहणका अपूर्व उत्सव यहा सुशोभित कराके भारतवासियोंको आनन्दित किया। तबसे दिल्ली राजधानीका राजनैतिक महत्व, वर्तमान समयमें भी, दिन पर दिन बढ ही रहा है, और आशा है कि, स्वातन्त्र्यप्रिय ब्रिटिश साम्राज्यके द्वारा, दिल्ली राजधानीको एक वार फिर स्वराज्यशासनका गौरव प्राप्त होगा।

परिशिष्ट (क)

दिल्लीके प्राचीन राजा।

राजाका नाम	शासनकी अवधि वर्ष	मास	दिन
१ राजा युधिष्ठिर	३३	८	२५
२ राजा परीक्षित	६०	१	०
३ राजा जन्मेजय	४८	५	२७
४ राजा अश्वमेध	८२	८	२४
५ राजा धर्म	८८	२	८
६ राजा मनजित	८१	११	२४
७ राजा जसरथ	७५	८	८
८ राजा दीपपाल	७५	१०	१८
९ राजा उग्रसेन	७७	७	२४
१० राजा सूरसेन	७९	८	६
११ राजा भूपति	६१	५	२
१२ राजा रणजित	६५	१०	२९
१३ राजा वीरजित	६४	७	३
१४ राजा भीमसेन	५५	८	२९
१५ राजा शुकमलदेव	६३	०	३
१६ राजा नरहरिदेव	६१	१०	४
१७ राजा सुजितरथ	७२	११	३
१८ राजा शूर	५८	०	८

राजाका नाम	वर्ष	मास	दिन
१९ राजा पर्वत	५०	८	२१
२० राजा मधुकरशाह	५२	४	७
२१ राजा टोडरमल ...	४८	१०	२९
२२ राजा भीष्मदेव ...	४७	१०	२९
२३ राजा नरहरिरथ ...	४७	११	०
२४ राजा पूर्णमल .. .	४४	८	१७
२५ राजा सारगदेव	५६	०	०
२६ राजा रूप	५४	१०	२
२७ राजा अभिमन्यु . .	५१	११	८
२८ राजा धनपाल .	४८	७	४
२९ राजा भीम . .	५८	५	१५
३० राजा लखमीदेव	४८	११	२१
कुल	१८५३	११	

इसके बाद लखमीदेवके प्रधान वीरसेनने लखमीदेवको मारकर राज्य ले लिया। उसके वंशजः—

१ राजा वीरसेन ..	१७	७	०
२ राजा सूरसेन	३२	८	०
३ राजा अनन्तशाह	३७	८	२३
४ राजा वीरशाह	३२	१०	७
५ राजा हरिरूप	३५	९	१७
६ राजा सुलोचन .	४३	१	४
७ राजा पर्वत .. .	४२	९	२४
८ राजा सुरपाल	३८	२	५

राजाका नाम	वर्ष	मास	दिन
९ राजा कृप	३५	४	१४
१० राजा पृथ्वीपाल	३१	८	११
कुल	३४७	९	२६

इसके बाद पृथ्वीपालके मत्री नरहरिनाथने पृथ्वीपालको मारकर राज्य ले लिया। उसके वशज—

१ राजा नरहरिनाथ	१५	१०	८
२ राजा जेतसिह	२७	७	१५
३ राजा वैरामगत	२१	२	१३
४ राजा दीपपाल	३५	४	१
५ राजा महाबल	३५	८	७
६ राजा अमृतपाल	२८	८	१०
७ राजा जेतपाल	२८	११	१०
८ राजा माणिकचन्द	२९	७	२१
९ राजा कामचन्द	३२	५	१०
१० राजा हरगोण	१७	०	११
११ राजा जीवनगोण	२३	९	२७
१२ राजा रीम्यवग	१३	७	२९
१३ राजा त्रिविक्रम	१०	२	१०
१४ राजा मारमल	२३	११	२४
१५ राजा भूपति	१०	२	२
१६ राजा उदितकठ	३५	२	२०
कुल	३८९	६	८

परिशिष्ट (ख)

दिल्लीके बादशाह।

गोरी घराना।

१ शहाबुद्दीन मुहम्मद	ई० स०	११८६–१२०६

गुलाम घराना।

२ कुतुबुद्दीन	"	१२०६–१२१०
३ शमसुद्दीन अल्तमश	"	१२१०–१२३५
४ सुलताना रजिया	"	१२३६–१२३९
५ मोइजुद्दीन बहराम	"	१२३९–१२४१
६ अलाउद्दीन मसऊद	"	१२४१–१२४३
७ नासिरुद्दीन महमूद	"	१२४३–१२६६
८ बल्बन	"	१२६६–१२८६
९ कैकुबाद	"	१२८६–१२८८

खिलजी घराना।

१० जलालुद्दीन	"	१२८९–१२९५
११ अलाउद्दीन	"	१२९६–१३१६
१२ मुबारिक	"	१३१६–१३२०

तुगलक घराना।

१३ गयासुद्दीन	"	१३२०–१३२६
१४ मुहम्मद	"	१३२६–१३५१

१५ फीरोजशाह	"	१३५१–१३८८
१६ गयासुद्दीन (दूसरा)	"	१३८८–१३८९
१७ अबू बकर	"	१३८९–१३९०
१८ मुहम्मद	"	१३९०–१३९४
१९ हुमायूं	"	१३९४–
२० महमूद	"	१३९४–१४१४

सैयद घराना।

२१ खिजरखा (तैमूरलंगका दीवान)	"	१४१४–१४२७
२२ मुबारिक	"	१४२७–१४३५
२३ मुहम्मद	"	१४३५–१४४५
२४ अल्लाउद्दीन	"	१४४५–१४५०

लोदी घराना।

२५ बहलोलखा	"	१४५०–१४८८
२६ सिकन्दर	"	१४८८–१५१७
२७ इब्राहीम	"	१५१७–१५२५

मुगल घराना।

२८ बाबर	"	१५२६–१५३०
२९ हुमायू	"	१५३०–१५४०
	फिर	१५५५–१५५६
३० अकबर	"	१५५६–१६०५
३१ जहांगीर	"	१६०५–१६२७
३२ शाहजहा	"	१६२७–१६५८
३३ औरंगजेब	"	१६५८–१७०७
३४ बहादुरशाह	"	१७०७–१७१२

३५ जहांदारशाह	,,	१७१२–१७१३
३६ फर्रुखसियर	,,	१७१३–१७१९
३७ मुहम्मदशाह	,,	१७१९–१७४८
३८ अहमदशाह	,,	१७४८–१७५४
३९ आलमगीर (दूसरा)	,,	१७५४–१७५९
४० शाह आलम	,,	१७५९–१८०६
४१ अकबरशाह	,,	१८०६–१८३७
४२ बहादुरशाह	,,	१८३७–१८५७